प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१. गंगा-ग्रंथागार, चर्खेवालाँ, दिल्ली
२. राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना
३. प्रयाग-ग्रंथागार, १, जासटनगंज, प्रयाग
४. काशी-ग्रंथागार, मच्छोदरी-पार्क, काशी
५. अमृत बुक डिपो नई देहली
६. साहित्य-रत्न-भंडार, सिविल लाइंस, आगरा
७. एन्० एम्० भटनागर ऐंड ब्रादर्स, उदयपुर
८. कन्हया लाल ऐन्ड संज, जयपुर
९. राजस्थान पुस्तक मंदिर अलवर
१०. दक्षिण-भारत-हिंदी-प्रचार-सभा, त्यागरायनगर, मदरास

नोट—हमारी सब पुस्तकें इनके अलावा हिंदुस्थान-भ[र के] सब बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुकसेलरों के [यहाँ] न भी मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें। हम उनके यहाँ मिलने का प्रबंध करेंगे। हिंदी-सेवा में हमारा हाथ बँटाइए।

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भा[र्गव]
अध्यक्ष गंगा-फाइनआ[र्ट-प्रेस]
लखनऊ

गंगा-पुस्तकमाला का १२१वाँ पुष्प

भाग्य

(सामाजिक उपन्यास)

लेखक
श्रीऋषभचरण जैन
(रचयिता भाई, क़ैदी, मास्टर सहाव, वेश्य-पुत्र
बुरक़े वाली, दिल्ली का व्यभिचार, बिखरे मोती
सत्याग्रह, हड़ताल, गऊवाणी, आदि)

मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार
३६, लाटूश रोड
लखनऊ

द्वितीय

सं० २००६ मूल्य २)

भूमिका

हिंदी की दुनिया में उपन्यास और उपन्यास लिखने वाले काफ़ी हो गए हैं, और दिन-दिन बढ़ते जा रहे हैं। लोगों का यह ख़याल है कि हर एक आदमी में प्रतिभा होती है, और उपन्यास लिखना आसान बात है, इसलिए हरएक आदमी उपन्यास लेखक बन सकता है। लोगों के इन तीनों मंतव्यों में से पहले और तीसरे से मेरा इत्तिफ़ाक़ है, पर मुझे भय है कि लोगों का बीच का ख़याल अधिकांश में ग़लत है।

मेरे वक्तव्य को पढ़नेवाले भाई मुझे माफ़ करेंगे, अगर मैं यह कहूँ कि आजकल लोग उपन्यास की ग़लत तारीफ़ (Definition.) करते हैं। उपन्यास के साथ लोग कम ज्यादा अर्थों में जंगली बेल की तुलना करते हैं; कहते नहीं, तो कम-से-कम समझते जरूर ऐसा हैं। जैसे जंगली बेल के विकास और उसकी वृद्धि पर कोई नियंत्रण नहीं होता, उसके स्वाभाविक फैलाव में किसी तरह की अड़चन डालने की कोई परवा नहीं करता, या उचित नहीं समझता, क़रीब-क़रीब उसी तरह आज के अधिकांश उपन्यास-लेखक कथानक को ढीला छोड़कर चाहे जिधर बहने देते हैं।

यह बात मेरे अधिकार के बाहर की समझी जाय, तो मुझे

गिला नहीं, क्योंकि मैं भी इस कमज़ोरी से बरी नहीं हूँ। अब तक के अपने अधिकांश उपन्यासों में मैं कथानक के साथ बहता-बहता बेतहर भटक गया हूँ। मेरी समझ में और लेखकों की तरह मैं अज्ञानता और कमज़ोरी का शिकार होकर उपन्यास लिखने में अब तक फ़ेल हुआ हूँ।

इस बारे में अगर ज़रा और साफ़-गोई से काम लूँ, तो आप बुरा न मानें। मैं यह समझता हूँ कि इस क़िस्म के ढीले-ढाले उपन्यास निकालने का एक ही सबसे बड़ा कारण है। मैं उसका निर्देश ऊपर कर चुका हूँ; यानी लोग उपन्यास लिखना बिलकुल आसान समझते हैं। आसान समझने के बाद हरएक आदमी अनायास ही अपनी प्रतिभा का उपयोग इस तरफ़ करने लगता है। हिंदी में चूँकि प्रोत्साहन और प्रशंसा बहुत सस्ती चीज़ें हैं, इसलिए उस नए लेखक की कच्ची प्रतिभा को पुष्ट होने का मौक़ा न देकर हिंदी-संसार उसी रूप में उसे पनपने की क़ाबलियत का सार्टीफ़िकेट दे देता है। उसके फल-स्वरूप अभागिन हिंदी जिस तरह ज़ंग-लगे लोहे के आभूषणों से दबाई जाती है, उसे आप भी देख रहे हैं, और मैं भी !

ख़ैर, यह बहुत बड़ी बात है। मुझे यह कहकर अपनी कैफ़ियत देनी चाहिए कि हिंदी में ऐसे उपन्यास भी मौजूद हैं ही, जिनके लिये आज से सौ साल बाद भी हिंदी गौरव का अनुभव कर सकती है और जिनकी गिनती अच्छी वस्तुओं में की जा सकती है।

अपनी इस किताब के बारे में मुझे कुछ कहना है। जब मैंने

इसे लिखा, तो मै आपको बताना चाहता हूँ कि जंगली बेल का खयाल दिल से निकाल दिया, और सुध-बुध भूलकर उसके साथ बहा भी नहीं। मैने हरएक शब्द पर इसके सारे कथानक की तस्वीर दिल आँख के आगे की रक्खी. और दिमाग़ का पूरा ज़ोर लगाकर इसे लिखा।

परंतु छपकर जब किताब मेरे सामने आई, तो मैने यह महसूस किया कि पूरे ज़ोर के बावजूद भी कई जगह रंग ठीक नहीं भरा गया है। गुणी पाठक भी उन स्थलों का अनुभव कर लेंतो अचरज नहीं, पर जो न समझ सकें, उन्हें यहाँ बता देने लायक़ हिम्मत का मैं अपने अंदर अभाव देखता हूँ। मुमकिन है आगे की चीज़ों में वैसी ग़लतियाँ बचा जाऊँ।

मेरा ऐसा मत है कि किताब लिखने की निस्बत उसकी भूमिका लिखना ज़्यादा मुश्किल है। इस किताब की भूमिका लिखने का कारण यह है कि यह मुझे ज़्यादा प्यारी लगी है, और इसे मैं अपने औपन्यासिक जीवन का 'अ' मानता हूँ।..........
आप विश्वास रख सकते हैं कि इसके आगे हर्गिज़ नहीं!

बाज़ार सीताराम
दिल्ली
२९-७-३१

स्नेह-पात्र—

पद्मचरण जैन

भाग्य

(१)

उम्र उसकी वीस वर्ष की है, और नाम कुमारी। व्याह अभी हुआ नहीं है, कुटुंब में केवल मा है।

वीस वर्ष की हिंदू-बाला कुँआरी कैसे ? सुनिए।

दयावती उसकी मां का नाम है। वड़े घर की वेटी थी, और वड़े घर में व्याही आई, इसलिए दयावती को अपने अतीत वैभव की याद भूलती न थी। गरीबी आए मुद्दत गुजर चुकी थी, और वीस रुपए मासिक के दर्जनों नौकर रखने वाली दयावती वर्षों से एक नौकर के वेतन में गुजारा चला रही थी। पर क्या मजाल, जो उसके आत्म-सम्मान, उसकी दृढ़ता और उसके बड़पन में वाल बराबर फर्क पड़ा। हो लक्ष्मी चंचल है, हुआ करे, वह चंचल क्यों हो ? और वह अपने व्यक्तित्व में परिवर्तन क्यों डाले ? इसी युक्ति के आधार पर उसके उपर्युक्त गुण—जली हुई रस्सी की ऐंठन की तरह तो कहना ठीक नहीं, हाँ, चन्द्रमा के सूखे समुद्र-चिह्न की तरह कह सकते हैं—उसमें रह गए थे।

लड़की कुमारी को वड़े ठाट-बाट से स्कूली शिक्षा दी गई थी। गाड़ी में जाती, और गाड़ी में आती। दो साईस गुलाबी साफे बांधे पीछे खड़े रहते, कोचवान की फुँदनेदार वर्दी झल-झल चमकती और घोड़े का पॉलिश किया हुआ साज सूरज की रोशनी में शीशे का धोखा देता।

जी हाँ, इस गाड़ी में बैठ कर वह स्कूल जाती और आती थी दोपहर में नौकर जलपान का सामान लाता, और शाम को हवा खिलाने ले जाता ......।

पाँचवे या छटे क्लास में आकर इस ठाट में परिवर्तन होना आरंभ हुआ। नौकर क्रमशः छूट गए, गाड़ी-घोड़े बिक गए, ऊँची विशाल अट्टालिका भी क़र्ज़दारों के पेट में चली गई, जेवर भी ख़त्म हो गया, और उस वैभव और शान का. स्थान कंगाली और निर्धनता ने ले लिया।

बात बहुत जल्दी से कह दी गई। जितने समय में यह परिवर्तन हुआ, वह यद्यपि समय के इस अनन्त प्रवाह में कुछ भी महत्व नहीं रखता, पर हमारे-जैसे छोटे जीवन वाले मनुष्य के लिए इस वर्षों की बात को चार लाइनों में लिख देना असंगत है।

चार-पाँच वर्ष लगे। व्यापार दिन-दिन गिरता ही गया। कुमारी के पिता का उपन्यास से कोई संबंध नहीं, न आगे उनका काम पड़ेगा, इसलिए उनका परिचय देना व्यर्थ है। बस, यह समझ लीजिए कि बड़े सच्चे व्यवसाई थे। घर बेचा, सर्वस्व त्यागा. पर तो भी इज्जत बचती दिखाई न दी, तो एक दिन संखिया खाकर सो गए। ऐसे बुद्धिमान और सहनशील व्यक्ति ने अपनी कन्या और पत्नी को निस्सहाय बना दिया, यह देख-सुनकर आश्चर्य और खेद तो अवश्य हुआ, पर आप ही बताइए अपमान की आग से थोड़ा-बहुत परिचय किसका नहीं है? यह जो न करा ले, थोड़ा है। बस, समय के इस प्रबल प्रवाह में पड़कर लोगों ने शीघ्र ही यह घटना भुला दी।

पिता जब मरे, तो कुमारी मैट्रिक में थी। अब तक ज्यों-त्यों करके, किसी तरह स्कूल जाती रही थी, पर अब बहुत

मुश्किल हो गया। गाड़ी-घोड़ा न सही, पैदल, जलपान नौकर न लावे, स्वयं ही, और शाम को घूमना तो हिंदू की इतनी बड़ी लड़की के लिए निषिद्ध ही है। अतएव विधाता के इस भयानक परिवर्तन में पड़कर भी लड़की अब तक किसी तरह स्कूल जाती रही थी.......।

अब उसकी माँ ने उसे स्कूल छोड़ने के लिए कहा, तो वह रोती-रोती पैरों पर गिर पड़ी, और हाथ जोड़ कर बोली—'माँ कुछ ही महीने की बात है, मैं इस परीक्षा में बैठ जाऊँ, यह मैं चाहती हूँ।'

बेटी के आँसू देखे, तो मा भी रो पड़ी। कहने लगी—'बेटी करूँ क्या? तू ना-समझ तो है नहीं, मैं तो तुझे एम० ए० तक पढ़ाती, पर भगवान को यह कहाँ स्वीकार? विधाता की इच्छा समझकर ही मैं तुझे स्कूल से उठा रही हूँ।'

'अरी मेरी माँ' बेटी ने गिड़गिड़ाकर रोते हुए कहा—'छ-सात महीने बाकी हैं, पलक-झपकते बीत जायंगे.......।

बेटी कितनी ना समझ है! रोटी को एक दिन का सहारा नहीं, कहती है, छ महीने.......। 'देख बेटी तुझे मैं यह समझा दूँ —सुन, घर में छ महीने के भोजन तक का प्रबन्ध तो है नहीं बता छ महीने तुझे पढ़ाने का खर्च कहाँ से आवे? जा मेरी लाड़ो समझदार लड़कों की तरह चुपचाप स्कूल से विदा ले, और जिद करके मेरा मन न दुखा!'

कुमारी ने कहा—'माँ' मेरे खर्च की तू चिंता न कर.......!'

'क्यों?

'आज अपनी हेड मिस्ट्रेस से मैंने इस संबंध में कहा था। मेरे पढ़ना छोड़ देने की बात पर उन्होंने कहा—'ऐसा कभी न करना। अगर तुम कहो, तो निश्शुल्क वहाँ रहने का प्रबन्ध हो

सकता है।'—तो माँ, अगर तू खर्च से घबराती है, तो इस प्रबंध में क्या हानि है ?'

मा बड़े संकट में पड़ी। बेटी का मोह उसे कितना था, यह आपको कैसे बताऊँ ? और, बेटी की इच्छा-पूर्ति के लिए वह कितना त्याग कर सकती थी, यह भी.......।

खैर, कहने लगी—'मेरी बच्ची, तुझे इतना आग्रह क्यों है ? काफ़ी पढ़-लिख ली, अब मैट्रिक पास करने से ही क्या होगा....?'

सोलह वर्ष की बेटी ने मा की गोद में सिर रखकर बच्चों की तरह मुस्कराकर कहा—'बताऊँ ?

हाँ।'

'देखो, मेरी हेड मिस्ट्रेस कहती थीं, मैट्रिक पास करने के बाद मुझे स्कूल में नौकरी मिल जायगी और इस तरह हमारा खर्च.......।'

उस दिन सहसा एक ऐसी बात हो पड़ी थी, और ऐसा काम निकल आया था कि दयावती को बेटी की बात का प्रत्युत्तर देने का अवकाश न मिला, और उसे एकदम वहाँ से उठना पड़ा। बेटी ने पूछा—'तो मा, मैं नहीं छोड़ूँ न ?'

'अच्छा !'—मा के मुँह से यह 'अच्छा' बहुत जल्दी में, शायद बिना सोचे-विचारे निकल गया था। वह काम क्या था ? कुछ ऐसा आवश्यक और अनिवार्य था कि उसकी मा को सचमुच कुछ सोचने-विचारने की गुंजाइश न रही।

उधर कुमारी हर्ष से उछल पड़ी।

भागी-भागी गई। पास की सहेलियों के पास जाकर यह खुशखबरी सुना आई। सभी ने हर्ष प्रकट किया, सभी को संतोष हुआ, और सभी ने उसे बधाई दी।

उसने निराश होकर उस दिन दोपहर को पाठ्य पुस्तकें इधर-उधर फेंक दी थीं, उन्हें सँभालकर उठाया, और झाड़-पोंछ कर यथास्थान रक्खा। टाइम-टेबिल का कागज जो रुआसी होकर उसने फाड़ डाला था, अब उसे गीले आटे से जोड़कर दूसरे साफ कागज पर उतारा, दवात-क़लम-पेंसिल इधर-उधर से खोज कर उसने ठीक-ठाक किया, और बड़ी रात तक उस दिन का पाठ याद करती रही।

उसकी माँ को उससे कुछ पूछ-ताछ करने का अवकाश तक भी न मिला। वह जिस काम में व्यस्त थी, आधी रात तक उससे छुट्टी नहीं मिली थी।

आप सोचें, ऐसा वह क्या काम था? शायद, लेखक को बहानेबाज और कल्पना-शून्य समझें। बेशक, मुझे बता देना चाहिए। बात यह थी, कुमारी के पिता से, कई बरस हुए, किसी ने चार हज़ार रुपए क़र्ज़ लिए थे। दुनिया में सभी तो बेईमान और दूसरे की विपत्ति से अनुचित लाभ उठाने वाले होते नहीं, अतएव उस संपन्न क़र्ज़-ख्वाह ने, मन-ही-मन अनेक तर्क-वितर्क कर, वे रुपए चुका देना ही स्थिर किया। वे क्या तर्क-वितर्क थे, और क्यों उसने रुपया देना स्थिर किया? यह कहने से एक नई कहानी बन जायगी। मगर यह बात सब जानते हैं कि उसका इकलौता पुत्र सहसा सख्त बीमार हो गया था, और शहर से एक प्रसिद्ध ज्योतिषी बुलाए गए थे। अब इससे जो परिणाम निकल सकता है, उसे लिखकर उस बेचारे के चरित्र को कलंकित न कर हम तो यही कहेंगे कि उसकी सद्भावनाओं ने उसे वैसा करने को प्रेरित किया।

हाँ तो बस, इसी रुपए के झंझट में दयावती इतनी व्यस्त रही थी। कहिए, ऐसे संकट-काल में चार हज़ार रुपए की दैवी

सहायता पाकर आप कितने व्यस्त न हो जावँगे, और अपको अपनी संतान की शिक्षा-दीक्षा के संबंध में क्या कुछ सोचना सूझेगा ?

कुमारी इस विषय में कुछ न जानती थी। शायद जान तो जाती, पर वह तो माँ के सामने पड़ना ही नहीं चाहती थी। शाम तो सारी उसने अड़ोस-पड़ोस की सहेलियों को खुशख़बरी देने में बिताई, रात होते ही वह अपनी कोठरी में बैठकर तिरस्कृत पुस्तकों को सँभालने और पाठ याद करने में लग गई, और तब चुपचाप आकर खाट पर पड़ रही।

जाने कैसी यह लड़की है! वह दो घोड़ों की गाड़ी में बैठकर स्कूल जाने की स्मृति भी उसे भूली न थी, वह नौकर के हाथ से जलपान का सामान लेकर खुद खाना और सहेलियों को खिलाना भी उसे भूला नहीं था........।

........और जब समय ने पलटा खाया, तो........

कभी स्कूल की गाड़ी में लदकर, कभी बाईं कलाई से पुस्तकें दबाकर अकेले ही स्कूल जाने में भी ज़रा-सी लज्जा, ज़रा-सा खेद या ज़रा-सा मल उसके मुख पर दिखाई न दिया। अतीत वैभव को यादकर आँसू बहाना या ठंडी साँसें लेना तो इस उम्र की लड़की में ख़ैर अस्वाभाविक है, मगर समय-समय पर उदास हो जाना अथवा हर वक्त बुझी-बुझी सी रहना, ऐसा वयस्क बाला में अवश्य ही देखा जा सकता था।

मगर मेरे उपन्यास की यह पात्री कुछ ऐसी अनोखी थी कि उसमें ऐसा कोई विकार न देखा गया, न देखा ही जाता है!

सच बात तो यह कि उस संपन्न अवस्था में भी यह कुछ अधिक चंचल, अहंकार-पूर्ण अथवा अधिकार-पूर्ण अपने को प्रकट न करती थी। एक स्थायी उदासीनता एक अस्वाभाविक

गंभीरता एक घनी सरलता उसके मुख पर आरंभ से दिखाई देती थी। जैसे हर वक्त किसी गंभीर विषय की आलोचना में निमग्न रहती हो, या जैसे पिछले जन्म की वृद्धावस्था की गंभीरता का कुछ अंश इस जन्म के बचपन तक चला आया हो।

हाँ तो बस, इसीलिये विधाता के भयानक परिवर्तन ने उसके व्यक्तित्व में किसी नए विकार की सृष्टि न की। उसी लगन से पढ़ती रही, उसी भाव से मिलती रही, और उसी सरल गंभीरता पूर्वक सब काम करती रही।

पढ़ने में खूब तेज़ थी, इस कारण और उसकी इस अपरिवर्तित गंभीरता और अनुच्छृंखलता के कारण भी स्कूल की लड़कियाँ, बल्कि अध्यापिकाएँ तक उसका आदर करती थीं, उससे प्रेम करती थीं और कहूँ—थोड़ा-थोड़-सा रोब भी मानती थीं।

दयावती आधी रात को सोने आई, तो बेटी को मुँह-ढाँके सोते पाया। वास्तव में कुमारी जाग रही थी। पर पहले कहा न, वह माँ की आँखों-आगे पड़ना नहीं चाहती थी। क्या जानें, कोई नई बात निकल आवे, और माँ अपने आदेश को बदल दे पगली लड़की! कैसी निरर्थक आशंका थी!!

एक बार माँ ने बेटी को जगाकर उसी समय चार हजार रुपए की खुशखबरी सुना देने का विचार किया, पर फिर रुक गई। आधी रात को क्यों कष्ट दूँ?

सोने का प्रदर्शन करती हुई बेटी की बंद आँखों को वह एक मिनट भर-नजर ताकती रही, और तब धीरे-धीरे आगे बढ़कर उस गोद में खेलो बच्ची 'कुमा—'के कोमल गालों को उसने चूम लिया! कैसा वात्सल्य!

कुमारी ने चुंबन का अनुभव किया, और एक गर्म आंसू भी

उसके गाल पर गिरा। यह क्या विचित्र व्यापार !

अचरज उसे हुआ जरूर, पर जागती थी, इसलिये सोचने लगी, आँखें खोलूं या नहीं। बस, इतना समय कहाँ था ? माँ अपनी खाट पर जा लेटी, और बेटी भी थोड़ी देर बाद गहरी नींद में सो गई।

सुबह दोनो उठीं। कहीं माँ रोक न दे, इस डर से कुमारी निगाह बचाकर नहाने-धोने चली गई। फिर पढ़ने की कोठरी में घुस गई, फिर रसोई-घर में।

आग सुलगा रही थी कि बाहर मां के पैरों की आहट सुनाई दी। अरे ! मना तो नहीं करेगी !

मा ने दर्वाजे पर खड़ी होकर कहा—'बेटी ?'

'चहरा फक्क ! कुमारी ने कहा—'हाँ, मा !'

'तू चौके से उठ, मैं झटपट रोटी बनाती हूँ—खाकर स्कूल जा !'

आह ! शंका निर्मूल हुई !

मगर यह परिवर्तन क्यों ?

तब धीरे-धीरे सारी बात खुली, और कुमारी का और छः महीने स्कूल में रहना स्थिर हुआ।

(२)

आखिर मैट्रिक का इम्ताहन दिया, और पास हुई। पर अब आगे पढ़ना असाध्य था। इस मैट्रिक पास करने से भी वैसी ही कठिनाई सामने आई, जैसी आगे पढ़ने से आती।

अर्थात उसका व्याह·······

जिस दिन परीक्षा का परिणाम आया, कुमारी कुछ महीने सोलह वर्ष की थीं। वर की तलाश में तो मा मुद्दत से थी, अब सरगर्मी से खोज शुरू हो गई।

पर मैट्रिक-पास सोलह वर्ष की लड़की के लिए बाईस साल का बी० ए०,एम० ए० वर कैसे मिले ?

और मिले तो अनेक, पर जो संपन्न घराने के थे, वे यहाँ रिश्ता न करते थे। जो गरीब थे, वे भी लंबी रकम दहेज में माँगते थे, मानो डिग्रियों के बल पर, ससुराल के धन के द्वारा, अपनी सारी गरीबी को धो डालना चाहते थे।

उस चार हजार में से पैंतीस सौ रुपया दयावती के पास था, और खासी धूम-धाम से बेटी का ब्याह किसी मध्यम श्रेणी के वर के साथ किया जा सकता था। परंतु पहले ही मैंने कहा न, उसके अतीत वैभव की स्मृति उसे ऐसा करने की आज्ञा न देती थी।

लक्ष्मी चंचल है—वह चंचल क्यों बने ?—अमीर घर की बेटी है, अमीर घर की बहू, अमीर घर में ही बेटी का ब्याह करेगी।

लोगों ने समझाया, लड़की ताड़ की तरह बढ़ी जा रही है। घर में जैसे भड़कती आग रक्खी है, न-मालूम कब सर्वनाश कर दे। समय बुरा है।

पर दयावती किसी की न सुनती थी। कहती, लोग मुझ से जलते हैं, मेरा अशुभ चाहते हैं, मुझे चार हजार रुपया मिल जाने के कारण द्वेष करते हैं।

ब्याह न हुआ, न हुआ।

एक दिन हुआ क्या ?

मा-बेटियों का अवशिष्ट अवलंब, वह पैंतिस सौ रुपया एक दिन चोरी चला गया।

हाय !

जिसने सुना, सिर धुनने लगा। कुमारी के दुर्भाग्य पर और

दयावती की मूर्खता पर। हाय! बेचारी लड़की! अब उसका ब्याह कैसे होगा? समझाते थे, ब्याह से निबट कर चैन से भगवद्भजन में मन लगा, पर उसकी तो बुद्धि सठिया गई थी। किसी की सुनती ही नहीं, मानती ही नहीं। लो, अब बेचारी लड़की न जाने कैसे अपात्र के हाथ पड़े।

उधर मा-बेटी ने तीन दिन तक अन्न का दाना मुँह में न डाला। मा-बेटी एक साथ न कहकर अगर यह कहें कि मा की देखा-देखी बेटी भी तीन दिन तक भूखी रही, तो अधिक ठीक है। पड़ोसिनें मिलने आईं, धैर्य दे गईं, समझा गईं, कोई-कोई लानत-मलामत भी दे गईं, पर दयावती चुप बैठी रही। न रोती न घबराती, न आहें भरती, न किसी को जवाब देती। केवल चुप साधे, घुटने पर बायाँ गाल टेके, स्थिर दृष्टि से शून्य आकाश में न-जाने क्या ताकती रहती।

पड़ोसियों ने पुलिस में खबर दी। तहकीक़ात हुई, तीन दिन तक आस-पास के गाँव के नामी बदमाशों की तलाशियाँ होती रहीं, परन्तु न कुछ मिलना था, न मिला।

जब कोई आशा न रही, तो दयावती एक लम्बी साँस लेकर खड़ी हुई और पास बैठी हुई शुष्क-मुखा बेटी का मुख जोर से चूम कर बोली—'जा बेटी, रोटी चढ़ा!'

स्वर से उसके एक अद्भुत दृढ़ता प्रकट होती थी, और ऐसा ज्ञात होता था, मानो तीन दिन में वह अपने कर्तव्य का निश्चय कर चुकी है।

कठपुतली की तरह उठकर तीन दिन की भूखी बेटी ने रोटी बनाई, मा ने सहायता की, और फिर चुपचाप दोनों ने खाई।

खा चुकने पर दया वती ने आप-ही आप कहा—'भगवान

ने लड़की की शिक्षा पूरी करने के लिए ही रुपया दिया था, अब पूरी होने पर छीन लिया। कोई बात नहीं !' और, इसके बाद भी धीरे-धीरे वह कुछ बड़बड़ाती रही।

कई दिन बीत गए। सोच धुँधला होने लगा। बात भूलने लगी। मा-बेटी के मुँह पर कभी कभी हास्य की रेखा दिखाई देने लगी।

एक बात और कह दें। दयावती का मैका देहात में था। उसके पिता किसी समय भारी जमींदार थे, तीन बंदूकों के लाइसेंसयाफ्ता थे। मकान क्या, एक बड़े महल में वह रहते थे। चार-चार हाथी उनकी पशुशाला में बँधते थे, और उनके संबंध में कहने लायक तो बहुत-सी बातें हैं—जैसे उनके इलाके में कोई मुकद्दमा अँगरेजी अदालत में न जाने पाता था, खुद फैसला करते थे, कई सौ आदमी, फौज की शक्ल में हथियार-बंद उनके यहाँ नौकर थे, इत्यादि—पर हम उनका एक दोष बताकर ही समाप्त करते हैं। बड़े तेज मिजाज और गुस्सैल आदमी थे। पड़ोस के एक ठाकुर से एक बार छिड़ गई। बात बहुत साधारण थी। मुकद्दमेबाजी शुरू हुई।

सत्रह बरस मुक़द्दमा चला, और दोनो ही पक्षों का सर्वस्व उसमें स्वाहा हो गया। सहसा दयावती के पिता का देहांत हो गया बेटा कोई था नहीं; जो कुछ था, सब दामाद का। पर अब बचा ही क्या था ? जो दस-पाँच हज़ार था, उसकी दामाद को फ़िक्र क्या थी ? बस, दामाद ने जाकर उनके धन से दो-एक कुएं, धर्मशाले बनवा दिए, और बाक़ी धन उनके रिश्तेदारों में बाँट दिया।

यानी, दयावती के मैके में दो-एक दूर के रिश्तेदारों के अतिरिक्त और कोई न था। जब तक मौज रही, रोज कोई-न-कोई आ टपकता था, पर दिन फिरे, तो किसी की सूरत तक दिखाई

देना बंद हो गई। किसी प्रकार की सहायात मिलनी तो बहुत दूर की बात है।

दोनो माँ-बेटी, अब अपने उसी छोटे, अँधेरे घर में रहकर समय विता रही थीं। जो दो,चार जेवर बचे, वे भी क्रमशः उद-रस्थ हो रहे। और आप जानते हैं, समय सब कुछ करा लेता है, बेचारी मेहनत-मजदूरी करने लगी थीं।

यह मेहनत-मजदूरी करने की बात आपको जरा-सी मालूम होती होगी। अनेक उपन्यासों में आपने इस प्रकार मेहनत-मज़-दूरी करने वाली माँ-बेटीयों या अकेली माँ या अकेली बेटी की बात पढ़ी होगी, पर मेरे उपन्यास की इन माँ-बेटियों से पूछिए, मेहनत-मजदूरी करना कैसा दुस्साध्य कर्म है। यह नहीं कि उससे आराम-तलबी में बाधा पड़ती है या हाथ दुखते हैं, बल्कि इतना नीचे गिर जाने के कारण उत्पन्न हुई लज्जा का अनुभव न करने में ही सारे कष्ट, सारी मुश्किल और सारे दुःख का सामना करना पड़ता है। ख़ासकर माँ को तो बहुत ही अखरा। कई वार कोठे में घुसकर रो पड़ी।

देखिए, अनुदारता से काम न लीजिए, जरा ग़ौर तो कीजिए, कहाँ थी, कहाँ पहुच गई, और वह ऊँचा आत्मसम्मान कितना नीचे गिर गया, और जिस दिन वह सुई-तागा लेकर बेटी के साथ बाज़ार की मजदूरी करने बैठी, उस दिन उसका कलेजा फटने में कितनी कसर रह गई होगी ?

पर कलेजा न फटता था, न फटा। हाँ, पिघला जरूर। अन गिनत बार रोई, और अनगिनत बार मजदूरी के पैसे से मँगाए हुए आटे की रोटी खाते-खाते उठ जाने पर बेटी ने उसे मनाया।

........हाँ, बेटी........!

बेटी के स्वभाव का कुछ आभास हम पहले दे चुके हैं। कैसी

विकार-हीन, कैसी गंभीर, कैसी सरल वह थी, इसका कुछ दिग्द-र्शन हम आपको करा चुके हैं। अगर मैं आपसे यह कहूँ कि ऐसा भयानक पतन होने पर भी उसके स्वभाव में कोई विकार और कोई अंतर नहीं पड़ा, तो आप आश्चर्य तो न करेंगे? ना, नहीं करना चाहिए, क्योंकि सचमुच ही नहीं पड़ा। इसमें ज़रा भी झूठ नहीं। हाँ यह मुझे कहना ही पड़ेगा कि उसकी गंभीरता कुछ ज्यादा बढ़ गई, और वह पहले की उदासी और बुझी-बुझी रहने की आदत कुछ घट गई। यानी अब हर वक्त उसके मुख पर एक अद्भुत तेजस्विता और ताज़गी दिखाई देती थी, और न-जाने किस गहन तत्त्व की चिंता में वह लीन रहती थी। सुबह से शाम तक सारा समय इस प्रकार चुपचाप सीने-पिरोने में बिता देती कि आप देखते, तो आश्चर्य करते। आप करते या न करते, यह मैं नहीं कह सकता, पर उसकी माँ अवश्य करती थी, और कभी कभी उसके ऐसे भाव पर मन-ही-मन नाराज़ भी हो जाती थी।

पर उस नाराज़गी को प्रकट न कर सकती थी। अजी, यह तो दूर रहा, वह तो उसके सामने बैठने या उससे आँखें मिलाने तक में शर्माती थी। कभी भीतर की कोठरी में बैठती, कभी मुँह ढककर पड़ रहती, कभी पास-पड़ोस में चली जीती, कभी........

मतलब यह कि हर वक्त वह बेटी से आँखें चुराती फिरती थीं। पास-पड़ोस में यह चर्चा थी—बुढ़िया बड़ी कृतघ्न है, बड़ी कामचोर है, बड़ी नीच है।! बेटी की कमाई पर गुजर कर रहीं पता नहीं, कौन-से नरक में इसे जगह मिलेगी, इत्यादि।

दयावती के कानों में यह चचा न पड़ी हो, ऐसा न था। पर सुनकर भी वह बेटी के साथ या बेटी के सामने बैठकर काम न कर सकती, न कर सकती थी। हाय-हाय! भला चर्चा करनेवाले क्या जानें, उसके हृदय में कौन-सी ज्वाला धधक रही थी, जो

उसे एक जगह स्थिर न रहने देती थी।

....हाय ! बेटी का ब्याह...........

बस, यही वह आग थी, यही वह चिंता थी, यही वह लज्जा थी, और यही वह उद्वेग था जिसके कारण उसे खाना-पीना, सोना, उठना-बैठना, यहाँ तक कि जीता रहना भी अत्यंत कष्ट पूर्ण मालूम होता था।

अब ब्याह कैसे हो ? अब तो कोई उपाय न रहा। संपन्न वर तो पहले ही दुष्प्राप्य था, अब असंपन्न शिक्षित भी कहाँ मिले ? भारी दहेज़ देकर कैसे उसकी धन-पिपासा को शांत करे, और कैसे उसकी शिक्षा का सदुपयोग कराए ?

और आप ही बताइए, किसी अशिक्षित, असंपन्न, अभद्र, असुन्दर वर को कैसे वह अपनी फूल-सी सुकुमारी लाडो बेटी सौंप दे, और अपने साथ ही कैसे उसकी सारी महत्वाकांक्षा, सारी उमंग, सारी प्रसन्नता पर पानी फेर दे ? हाय ! कोई इस विपत्ति से बेचारी को छुटकारा दिलाकर महापुण्योपार्जन करे !

दिन बीतने लगे—ब्याह न हुआ।

एक बरस की दौड़-धूप में अनेक लड़के मिले। पर कोई बद-सूरत, कोई दुराचारी, किसी के तीन ब्याह हो चुके, कोई कुसंस्कृत, कोई मूर्ख—बस, इन्हीं दोषों के कारण बेचारी लड़की अविवाहित ही रही। लोगों की राय में—अभागी दयावती का कैसा दंभ था !

ज्यों-त्यों दिन बीते, दौड़-धूप में शिथिलता होती गई। रोग पुराना होता गया, चिंता घटती गई।

क्रमशः चार वर्ष बीते, और कुमारी अब बीस वर्ष की है।

एक बात रही जाती है। स्कूल की एक सखी दयावती से अभी तक स्नेह प्रेम नहीं तोड़ सकी है। बड़े घर की बेटी है।

नाम है करुणा। कुमारी के साथ ही उसने मैट्रिक पास किया था, अब आगे पढ़ रही है। शायद फ़ोर्थ इयर में है। जिस दिन पढ़ना छूटा, कुमारी तो घर की चिड़िया हो गई। भला हिंदू की लड़की, वयस्क और अविवाहित कैसे घर से बाहर निकले? पर उनकी वह सखी करुणा बराबर इससे मिलने आती रहती है। विशेष परिचित तो आप आगे चलकर उससे होंगे, यहाँ तो कुछ और ही बात कहना चाहता हूँ। उसे सुनिए—

आज से तीन वर्ष पहले करुणा से कुमारी ने कहा था—"स्कूल की प्राइमरी कक्षा के लिए एक अध्यापिका की आवश्यकता है। प्रधान अध्यापिका खुशी से वह 'चाँस' तुमको दे देंगी। अगर तुम कहो, तो कोशिश की जाय।"

कुमारी ने कहा—"मा से पूछूंगी।"

यथासमय मा से पूछा गया। मा-बेटी आमने-सामने खड़ी थीं। बेटी की बात सुनकर मा ने आगे बढ़कर उसे छाती से चिपका लिया, और रोते-रोते बोली—"अरी, मेरी बेटी, तू यह क्या कहने लगी!"

एक बार खूब जोर से छाती से चिपकाकर दयावती कोठरी में घुस गई, और दर्वाजा बंद करके शाम तक बाहर न निकली।

शाम को निकली, तो आँखें सूज रही थीं, चेहरा लाल हो रहा था, शरीर काँप रहा था।

बेटी से बोली—"ना बेटी, ऐसा न होगा। विचार तक न करना!" बस, तब से अब तक वह बात ज्यों-की-त्यों दबी पड़ी है!

(३)

एक दिन संध्या-समय कुमारी कार्यवशात् सोने की कोठरी में गई। दीवार पर एक फ़ोटो लटक रहा था। मैट्रिक की समस्त

छात्राओं का यह सामूहिक चित्र था। कुमारी चित्र के पास खड़ी हो गई, और प्रत्येक छात्री को देख-देखकर पहचानने लगी।

ओफ़! कैसे मधुर समय का चित्र उसकी आँखों-आगे से घूम गया!

वह साथिनों की चुहल, वह प्रतिस्पर्द्धी प्रेम, वह झूठमूठ की लड़ाई, वह माधुर्य-पूर्ण 'कुट्टी', वह बालपन की दलबंदी-ओफ़! वे सब कहाँ विलीन हो गई? हाय! अब वे कहाँ देखने को मिलेंगी?

माना, कुमारी इन सब चंचल और बचपन की शैतानियों में अगला हिस्सा नहीं लेती थी, या लेती भी थी, तो बहुत कम; मगर इससे कैसे इनकार करूं कि वह इन्हें देख-देखकर कम-से-कम प्रसन्न तो होती थी? या अब उन्हें याद कर-करके प्रसन्न तो होती ही है?

इस बीस वर्ष की कुमारी पर उस मधुर स्मृति ने कुछ ऐसा असर डाला कि उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

कई आँसू ढलक चुके थे, और उसने आँखें पोंछी नहीं थीं। सहसा संयोगवश दयावती, उसकी माँ, कोठरी में घुस आई।

घुसते ही बेटी के आँसुओं पर उसकी नजर गई। क्षण-भर को द्वार के पास ठिठककर उसने अचरज से उधर देखा, और फिर आगे बढ़कर बेटी को छाती से लगा लिया। बोली—"क्यों.......?"

कलेजा उसका जोर से धक्-धक् करने लगा। बेटी क्यों रोती है? हाय मैं अभागिन.......। बीस वर्ष की.......। ब्याह!

ऐसे टूटे-फूटे भाव पलक-झपकते उसके मन में आए।

बेटी तब तक सँभल चुकी थी। आँसू उसने पोंछ लिए, और हँसने की चेष्टा करने लगी।

"क्यों बेटी", दयावती ने स्नेह-सिक्त स्वर में पूछा—"क्यों रोती है?"

कुमारी ने मुस्किराकर कहा—"कुछ नहीं माँ, कुछ नहीं—छिः ! मैं कैसी पगली हूँ !"

"बता तो; ना ! मैं पूछे बिना नहीं मानने की। क्यों रोती है ? दयावती ने अपने रूखे हाथ बेटी के गालों पर फेरते हुए कहा

बेटी खिलखिलाकर हँस पड़ी, और बोली—"अरी माँ, कुछ नहीं, कुछ नहीं ! मैं बड़ी पगली हूँ।"

क्षण-भर ठहरकर माँ ने अपना औत्सुक्य शांत करने की चेष्टा की, पर न हो सका, और वह ललककर बोली—"ना, मेरी लाडो, बता दे !"

बेटी ने माँ का आग्रह समझा, पर कुछ कहती-कहती रुक गई, और मुस्किराकर बोली—"माँ, शर्म लगती है !"

माँ ने उत्तर में केवल "हिश्—" कहा था कि बेटी ने कड़ा जी करके कह डाला—"इस चित्र को देखकर—"

"क्या ?"

"इस चित्र को देखकर" उसने कहा—"मुझे स्कूल की साथिनों की याद आ गई थी ! देख तो, मैं कैसी पगली हूँ। देख, यह सुशीला है, यह सरला है, यह विद्या है, यह करुणा है........।"

चित्र पर उँगली-रख-रखकर कुमारी लड़कियों के नाम बता रही थी। 'करुणा' का नाम लेते ही दयावती ने कहा—"करुणा ? यही करुणा ?"

"हाँ; बस इन्हीं की याद आ जाने से........।"

"इधर तो बहुत दिनों से करुणा आई नहीं।........शायद उस पर भी हमारी गरीबी........।"

"ना मा, करुणा वैसी नहीं है, उसके मन में ऐसा भाव नहीं आ सकता।"

"हाँ, यों तो लड़की बुरी नहीं है, पर बेटी, समय की गति

विचित्र है !"

"कुछ भी हो मा, करुणा का स्वभाव बड़ा पवित्र है, वह मुझे बहुत समझती है। बात यह है कि परीक्षा से निबट चुकी है, शायद कहीं घूमने चल दी हो, या और किसी काम में फँसी हो।

मा करुणा के विषय में इतनी उदार बनना नहीं चाहती थी। इतने दिन से नहीं आई, यह अवश्य उसका दंभ है ! अमीर की बेटी है, कॉलेज में पढ़ती है, भला दंभ क्यों न करेगी ? इस समय उसे अपनी अभागिनी सखी की याद कैसे आ सकती है !

मनुष्य कितना शीघ्र अनुदार बन जाता है !

पर बेटी उसकी वकालत कर रही है, और इससे कुछ ही पहले न-जाने क्यों रो चुकी है, अतएव अधिक विरोध करके उसका दिल दुखाना मा ने उचित न समझा, और बात टाल दी।

तब दोनो मा-बेटी कोठरी से बाहर आईं।

सामने ही द्वार था, और सीधी गली में से होकर नज़र सड़क पर पहुँचती थी। सहसा दोनो ने देखा, गली के नुक्कड़ पर सड़क के किनारे, एक बढ़िया घोड़ा-गाड़ी आकर खड़ी हुई।

करुणा ! करुणा ! करुणा की गाड़ी है।

क्षण-भर बाद ही गाड़ी का द्वार खोलकर करुणा स्वयं उतरती दिखाई दी।

एक सुशिक्षिता, अमीर की बेटी का साधारण फ़ैशन था। लेडी-शू, मोजे, रेशमी साड़ी, जैकेट और कलाई पर घड़ी ! गाड़ी से उतरकर जल्दी-जल्दी गली में घुस आई, निस्संकोच भाव से, खुशी से खिलती हुई, उस गंदे, बदबूदार, अँधेरे घर के द्वार पर पहुँची।

मा-बेटी अब तक खड़ी उसकी तरफ़ ताक रही थीं। अब करुणा आगे बढ़ी और हँसकर उनकी तरफ़ देखा।

करुणा जल्दी-जल्दी आगे बढ़कर एकदम कुमारी से लिपट गई !

वाह ! कैसा अद्भुत स्नेह है ! हमें तो सचमुच अचरज हुआ।

कुमारी की धोती कैसी मैली, गंदी और अस्त-व्यस्त है, और करुणा की साड़ी कैसी नई, क़ीमती और झल्-झल् करती ! कैसी, बिना हिचके, वह लिपट गई ! कम-से-कम कपड़ों का तो ख़याल रखती !

करुणा ने सखी को छाती से लगाकर इतने ज़ोर से खींचा कि कुमारी का दम घुटने लगा, पर करुणा के इस पागलपन को सहने की वह अभ्यस्त है, इसलिये कुछ कह न सकी।

जब दोनो सखी अलग हुई, तो दयावती ने कहा—"करुणा, बड़ी उमर है तुम्हारी ; अभी हम तुम्हें ही याद कर रहे थे।"

करुणा ने दयावती की बात का जवाब न दिया, और सखी से पूछा—"क्यों री कुम्मो ! बता, क्या कह रही थी ? क्यों याद कर रही थी ?"

कुमारी मुँह से कुछ न बोली, सखी की तरफ़ देखकर बस, धीरे से मुस्किरा पड़ी। दयावती ने कहा—"यही कह रहे थे कि तुम बहुत दिन से इस तरफ़ आई नहीं।"

करुणा ने कुमारी की। ठुड्डी पर उँगली से छुआकर कहा—"क्यों री, यही बात थी ? मेरी याद आख़िर तुझे आई ?"

कुमारी ने फिर उसी प्रकार मुस्किरा दिया।

दयावती बोली—"याद क्या, हम तो कुछ बुरा भी मान गए थे, समझा, शायद........।"

सहसा कुमारी ने मा की तरफ़ देखकर उन्हें चुप कर दिया।

करुणा तो सखी के मुँह से ही कुछ सुनना चाहती है। करुणा

तो सखी की गंभीरता भंग करना चाहती है। करुणा तो सारा अभिमान अभियोग सखी से ही सुनने को उत्सुक है! वह दयावती की बातका उत्तर दे कैसे? और उसे इसका होश कहाँ? उसने दोनो हाथ सखी के कंधों पर रखकर जोर से उसे झँझोड़ा, और क्रोध का प्रदर्शन करते हुए कहा—,' क्यों री! बुरा मान गई थी? क्यों? रूठ गई थी? बोल ....',

अब की बार करुणा को उत्तर न मिल सका। कुमारी तो उसी प्रकार मुस्किराकर रह गई, और दयावती वहाँ से चली गई। कैसा दंभ इस लड़की को है!,, दयावती ने सोचा —"मैं इतनीबार इससे बोली, और वह मेरी बात का उत्तर तक नही देती है!,

दयावती असंतुष्ट होकर चली गई है।

अब कुमारी ने करुणा का हाथ पकड़ा, और दोनो सखियाँ सोने की कोठरी में पहुंची।

बिस्तर सरकाकर करुणा पहले ही खाट पर बैठ गई। फिर दूसरी चारपाई पर कुमारी भी बैठने लगी

'न न.इधर. इधर!, करुणा ने उसे खींचकर ,उसी चारपाई पर , अपने बराबर, बैठा लिया।

सखी की बगल में हाथ डालकर करुणा ने उसके कान पर मुंह लगाया. और धीरे धीरे कहना शुरू किया —' ओ री, मेरी मानिनी कन्या! न,न! सुनती हूँ, कुमारी देवीजी , कृपा करके, अपना मान भंग कीजिए, और ज़रा ओर हट मेरी कैफियत सुनिए, इतने दिन तक न आने का अभियोग जो देवीजी, आपने मुझ पर लगाया है, वह मैं स्वीकार करती हूँ। और, यह कहकर आपसे क्षमा-प्रार्थना करती हूँ कि मेरी परीक्षा का फल आ गया है और आपकी यह अकिंचन दासी काव्य-विशारद में पास हो

गई है ....!,

कुमारी ने उछलकर सिर घुमाया, और कहा —" अच्छा ? वाह! ? कब?,

करुणाने भयानक गंभीरता का प्रदर्शन करते हुए कहा— देवीजी के प्रशन के उत्तर में सादर, सविनय, सप्रेम निवेदन है कि आज चार बजकर पैंतालीस मिनट पर परीक्षा-फल प्रकाशित हुआ है, और सुनते ही मैं आप की सेवा में उपस्थित हुई हूँ ।"

कुमारी कौतुक-दृष्टि से सखी के गोरे मुख को ताकती हुई निश्चल, निर्वाक बैठी रही ।

"आगे, देवीजी की पवित्र सेवा में अत्यंत विनय-पूर्वक नमस्कार के बाद सिर झुकाकर निवेदन है कि आप कल के लिये इस अकिंचन करुणा का नम्र निमंत्रण स्वीकार करें ।"

अब कुमारी खिलखिलकर हँस पड़ी' और जल्दी-से दायाँ हाथ उसके मुह पर रखते हुए बोली--"अरे, बस, हो चुका ! अब यह अपना गंभीर वक्तव्य समाप्त कर !"

"आशा है, गंभीरता की प्रतिमूर्ति कुमारीदेवीजी मेरी गंभीरता का अवलोकन कर मुझसे प्रसन्न हुई होंगी, और........।"

"फिर वही ! बस, हो चुका !"

"गंभीरता का अवलबन करके मुझे देवीजी की पवित्र वाणी ...."

कुमारी ने ज़ोर से उसका मुँह भीच दिया।

"अरे ! छोड़ो-छोड़ो ! मेरा दम घुटता है !" आखिर करुणा ने कहा।

"बोल, अब तो शैतानी न करेगी ?"

"न, बस छोड़ो, मान भंग हो गया, अब नही...."

हाथ हटा लिया गया, खाँस-छींककर करुणा स्वस्थ हुई, और

फिर ताली बजा-बजाकर जोर से हँसने लगी।

भौंह चढ़ाकर कुमारी ने, अधिकार-पूर्ण स्वर में कहा—
"मानेगी नहीं? क्यों? जा, फिर—"
कहकर कुमारी सरक कर एक फुट पीछे हट गई।

आगे सरक कर करुणा फिर उससे जा सटी, और बड़ी शोखी से उसकी तरफ देखती हुई बोली—'अब कहो! भागो, कहाँ भागती हो!'

अब कुमारी ने मन ही मन इसमें हार मानी, और कहा—
अच्छा बोल, कितने नंबर मिले?'

करुणा ने सीधी लड़की की तरह नंबर बता दिए।

कुमारी ने धीरे से कहा—'बधाई?'

करुणा ने नेत्रों में बचपन और गर्व का छिछोरा हास्य भर-कर कहा—'थैंक्यू।'

'अब?'

'क्या?'

'आगे पढ़ेगी?'

'मेरी इच्छा तो है.......'

'परंतु...?'

'पिता जी चाहते हैं....'

ब्याह कर दिया जाय। क्यों?'

'हाँ!' पहले झेंपकर और फिर सहसा दृढ़ और गंभीर होकर कहा।

'कौन भाग्यशाली हैं वे?'

'बताऊँ?'

'हाँ।'

करुणा ने सतर्कता से चारों तरफ देखा, और कुमारी के

कान के पास मुँह ले जाकर कहा—'प्रोफेसर नकुलचंद्र महोदय।' और फिर उसने सखी की गोद में मुँह छिपा लिया। कुमारी ने आप-नहीं आप कहा—'....एम० ए० बी० टी०' ये प्रोफेसरलचंकुर महोदय की डिग्रियाँ थी।

(४)

दो मिनट तक करुणा उसी प्रकार सखी की गोद में मुँह छिपाए पड़ी रही। तब कुमारी ने कहा—'अच्छा अब उठो, लज्जा हो चुकी!'

करुणा तब भी न उठी, तो कुमारी ने मधुर विरक्ति का प्रदर्शन करते हुए कहा—'अरे रे! छिः! उठ तो सही, देख तुझे मेरी इस गंदी धोती में बास नहीं आती?'

कहकर उसने जबर्दस्ती उसका सिर ऊपर उठाया।

असल में करुणा ने जैसी लज्जा का प्रदर्शन किया था, उतनी लज्जित वह हुई न थी। आधुनिक समय की बी० ए०-पास चंचल लड़की न भावी पति का परिचय देने या नाम बताने में संकोच करती है, न व्याह के संबंध में बात करते हिचकती है। करुणा के व्यवहार में बड़ी भारी कृत्रिमता थी, और कह सकते हैं, बड़ी भारी दुर्बलता भी। सखी के साथ कपट या कृत्रिमता का व्यवहार करने से, संभव है, कभी या तभी, उसे खेद हुआ हो, और उसने अपनी दुर्बलता को महसूस किया हो, पर हम तो यह समझकर कि उसकी कृत्रिमता में कोई दुर्भाव न था, स्वयं उसे क्षमा कर देंगे, और आप से सिफारिश करेंगे कि उसे क्षमा कर दें। इस कृत्रिमता में जो कुछ था, मैं उसे जानता हूँ, और जब मैं करुणा की वकालत कर रहा हूँ, तो मेरा धर्म है मैं उसे आपको बता दूँ। उसमें गंभीर सखी को कौतूहल-पूर्ण बनाकर इस संबंध में चुहल करने की अप्रत्यक्ष, अव्यक्त और

अज्ञात प्रेरणा का भाव था।

उसकी इच्छा पूरी भी हुई। कुमारी ने कहा—'तब तो तुम बड़ी सौभाग्यशालिनी हो!'

'सच ?, करुणा ने शैतानी से गर्दन मोड़ कर, आँखों में मुस्किराते हुए, कहा—'क्यों बनाती हो ?'

कुमारी हँसी, और फिर गंभीर स्वर में बोली—"कैसे ? बनाती क्यों हूँ ?"

"और नहीं तो क्या; भला बताओ, क्यों सौभाग्यशालिनी हूँ ?"

कुमारी ने उसी गंभीर स्वर में कहा—"प्रोफेसर नकुलचंद्र! प्रोफेसर नकुलचंद्र एम० ए० बी० टी०—प्रोफेसर साहब बड़े भारी विद्वान् हैं!"

"अच्छा ? बड़े भारी विद्वान् हैं ? ऊँह! जाने भी दो! तुम क्या उन्हें जानती हो ?"

'हाँ।" कहकर कुमारी ने पास की अल्मारी खोली, और किसी पत्रिका के कुछ अंक बाहर निकले।

"देखो," उसने कहा—"प्रोफेसर साहब कभी-कभी इस पत्रिका में लिखते हैं। कई वर्ष से मैं उनकी लेखनी का रसास्वादन करती आई हूँ। ये लेख ही उनकी प्रकांड विद्वत्ता के प्रमाण हैं। लो देखो!"

तरफ़ लाल पेंसिल से निशान किया गया था। उसने झपटकर वह अंक उठा लिया, और पढ़ते हुए बोली—"श्रीमती कुमारी, अच्छा! यह श्रीमती कुमारी क्या देवीजी ही हैं? हाँ, क्या लिखती हैं—'गीता की व्यापकता', वाह रे, मेरी लेखिका! देखू देखूँ........'

कहते-कहते उसने और भी दो-एक अंक उठा लिए, कई में लाल पेंसिल से चिह्नित, श्रीमती कुमारी-लिखित लेख मौजूद थे।

तब यह बात खुली। कुछ समय से कुमारी ने लिखना आरंभ किया है। इसी पत्रिका के द्वारा प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र को वह जानती है, इसी पत्रिका में उसने उसके लेख पढ़े हैं, और उन्हीं लेखों के द्वारा उसके हृदय पर उनकी विद्वत्ता का सिक्का जमा है।

सब सुनकर करुणा ने न-जाने क्या सोचा, और कहा—"अच्छा कल किस वक्त चलोगी?'

'अरे! कहाँ?' अब उसे निमंत्रण की बात याद आई।

'मालूम होता है, फिर गंभीर बनना पड़ेगा!' करुणा ने निराशा से सिर हिलाते हुए कहा।

'ना, मुझे याद आ गया। अच्छा, कैसा निमंत्रण देती हो?'

'देसी समझो!'

कुमारी हँस पड़ी। बोली—'ना, मैं यह पूछती हूँ, किसलिये कल का निमंत्रण देती हो?'

'इसलिये कि एक महिना इस अकिंचन दासी के न आने के कारण देवीजी जिस प्रकार रुष्ट हो गई, उसी तरह चार साल से अपनी कुटी को उनकी चरण-रज से पवित्र होते हुए न देखकर ऐसा न हो, वह भी असंतुष्ट होकर रो पड़ने का मौक़ा पा जाय'

'धत्!' कहकर कुमारी हँस पड़ी।

'अरी मा, कल कुमारी को लेकर हमारे घर आना !'

'क्यों ?'

'यों ही; मा तुझे बहुत याद करती है। कहती थी—मेरे हाथ पैर रह गए, नहीं मैं ही आती। अरी मा, तू कल जरूर, जरूर, जरूर आईयो, और कुमारी को भी लाइयो।'

'तो तेरी मा का जी कसा है ? अब तो जमनाजी भी नहीं आती है।'

'अरी मा, वह तो मृत्यु-शय्या पर पड़ी है, हाथ-पैर बेकार हो गए हैं, धड़ शिथिल हो गया है। केवल मुँह से बोल सकती है। डॉक्टर लोग कहते हैं, कुछ दिन की मेहमान है।'

जी में तो मा के यह आया—कहूँ, कल क्यों, अभी चलूँगी। पर यह तो कल को........। बोली—'अच्छा आऊँगी।'

'हाँ, कल गाड़ी आ जायगी। बोलो, किस वक्त आओगी ?'

'दस-ग्यारह बजे भेज दूँगा।'

'अच्छा। कुमारी को भी साथ लाना।'

'कुमारी को ? यह कैसे हो सकता है ? घर अकेला जो रहेगा ?'

'अरी मा, तुम दोनों को कल का निमंत्रण देने आई हूँ। मा ने कहा है। वहीं खाना होगा।...'

मा कुछ पूछना चाहती थी कि चौंक कर पहले सिलसिले में ही लड़की ने कहा—'......और हाँ मा, सुन तो, मैं पास हो

पर साथ ही उसके मुँह से एक ठंडी साँस निकल गई। हाय! आज मेरी कुमारी भी बी० ए० पास कर लेती!

करुणा ने कहा—'तो मा, आएगी?' बोल।'

'आऊँगी।'

'कुमारी को लेकर?'

'अच्छा!'

धन्य ईश्वर! काम आसानी से बन गया!

अब उस अद्भुत, चंचल लड़की ने गला छोड़कर मा के पैर पकड़ लिए।

'अब...! यह क्या?'

'मा! मैं बड़ी पगली हूँ।'

'वह तो है ही।

'तो मुझसे बड़ी भूल हुई! क्षमा कर।'

'यह और पागलपन। कैसी क्षमा?'

मा! सच बता, नाराज तो नहीं?'

'छिः! भाग! नाराज कैसी?'

'बस तो—'

तब मा के चरणों में अत्यन्त भक्ति-भाव से मस्तक झुकाकर करुणा कुमारी के साथ फिर सोने की कोठरी में घुस गई।

मा हँसकर, संतुष्ट होकर रसोई-घर में गई।

'अब तो आवेगी न? बोल।' कोठरी में घुसते ही खुशी से उछलकर करुणा ने पूछा।

'देखो, शायद।'

'ऐं! अब भी 'देखो, शायद?' क्यों?'

'अच्छा, आऊँगी।'

'हाँ, तो ठीक। वर्ना मुझे किसी और मंत्र से

पकड़ता।'

'अच्छा! और मंत्र क्या?'

'बस, अब न बताऊँगी।'

'अच्छा, तो मेरे आने का भी निश्चय नहीं।'

'अच्छा! अच्छा! अच्छा! बाबा सुन! कान में सुन!'

कान में कहा गया—'परम विद्वान प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र महोदय से भेंट होगी।

'सच?'

'सच। कहो, अब तो निश्चय है?'

'अच्छा।'

कुछ बातें और भी हुई थीं, पर सखियों का गुप्त वार्तालाप सुनकर या आपको सुनाकर हम अपनी सभ्यता का दुरुपयोग नहीं करेंगे, इसलिए कानों में उँगली ठूँस लेते हैं।—और जोर से—और जोर से—!

(५)

रात से ही दयावती को हल्का बुखार था। इस बुखार की कुछ परवा न कर, सुबह गजरदम, वह जमना नहाने चली गई। खूब गोते लगा-लगा कर नहाई, और घर लौटते-लौटते भयानक ज्वर का प्रकोप हुआ।

कुमारी ने मा की यह दशा देखी, तो एक वार घबरा गई, फिर स्वस्थ होकर रोगी की परिचर्या में लगी। क्या करे ? डॉक्टर-वैद्य को बुलाने के लिए पैसा नहीं, डोली में बैठाकर किसी तरह वैद्य परमानंद के दवाखाने तक कोई मा को ले जाय ! हाय ! हिंदू की वयस्का कुँआरी लड़की ऐसा दुस्साहस कैसे करे ?

कुमारी ने एक वार बिलककर कहा—'मा ! मैं किसी के हाथ डोली मँगा लेती हूँ ' चल, वैद जी को दिखा दूँ।'
मा कपड़ा ओढे, सिर बाँधे, अचेत-प्राय पड़ी थी। हाथ हिलाकर चीण स्वर में, बोली—'ना ! चिंता न कर, मैं अभी अच्छी हुई जाती हूँ।'

घर में थोड़ी काली मिर्चें मौजूद थीं। जल्दि-जल्दि उन्हें कूटकर कुमारी ने शक्कर की चटनी तैयार की, और मा को पिला दी।

दोपहर के वाद ज्वर का प्रकोप घटना आरंभ हुआ। क्रमशः ताप कम हुआ, और दयावती के होश-हवास भी ठीक होने लगे पर चेहरा तब भी तमतमाया हुआ था, और शरीर का जैसे सत निकल गया; हाथ-पैर उठते न थे।

होश में आते ही पहली वात दयावती के मुँह निकली—
"अरी वेटी, तूने क्या खाया ?'
बेटी अभी तक भूखी थी। बोली—'कुछ नहीं मा, भूख ही

नहीं थी।'

'अरी बावली बेटी, साधारण ज्वर से इस तरह घबरा गई। जा, अब मैं स्वस्थ हूँ, तू रोटी बनाकर खा!'

'न मा, भूख नहीं है।'

'जा, मुझ में ज्यादा बोलने की शक्ति नहीं, करके खा ले!'

कहते-कहते न-जाने क्यों दयावती की आँखों में आँसू छल-छला आए।

अब बेटी स्थिर न रह सकी। बोली—'तुम भी खाओगी?'

'न, मैं आज एकासना करूंगी, अगर संध्या तक तबियत न सम्हली, तो उपवास कर लूँगी। तू जा!'

रोटी बना-खाकर कुमारी मा के पास आकर बैठी ही थी कि किसी ने बाहर से आवाज़ दी—'बीबीजी!'

दयावती ने कहा—'पूछ तो, कौन है?'

पूछने पर जवाब मिला—'कोचवान।'

ओह! करुणा ने गाड़ी भेजी है। आज का निमंत्रण दे गई है न!

पर कैसे जायं? दयावती तो बुख़ार में पड़ी है।

कुमारी ने कहा—'मा, कह दूँ—अब नहीं चलेंगे।'

मा मुश्किल से उठकर खाट पर बैठ गई, और सुस्ताने लगी मानो अपनी शक्ति को तोल रही हो, और बोली—'कह दे—अभी ठहरे।'

कुमारी ने झट कह दिया।

दो मिनट बैठकर दयावती फिर निढाल होकर लेट गई। मिनट-भर कुछ सोचती रही, फिर बोली—'अच्छा, संदूक खोल!'

घर में एक ही संदूक था, फिर भी कुमारी ने पूछा—'कौन-सा संदूक?'

कपड़ों का।'

'मा, फिर कभी चलेंगे, अब कह दूँ........'

'तू संदूक तो खोल।'

बेटी ने मानो हारकर संदूक खोला। सुबह से जिसके विषय में वह निराश हो चुकी थी, क्या वह इच्छा पूर्ण होगी?

संदूक का सामान देखकर रोना आता था। बरसों पहले की, पुरानी, मैली तीन-चार रंगीन धोतियाँ, दो बद-रंग लहँगे, एकाध पुरानी चद्दरें और ऐसा ही कुछ और पहनने-ओढ़ने का सामान।

कुमारी मिनट-भर इस सामान की तरफ़ हसरत-भरी नज़रों से देखती रही, फिर मा की तरफ़ मुँह फिराकर पूछा—'हाँ, बोलो।'

'तू सारे कपड़े निकालकर मेरी खाट पर रख दे!'

'तो क्या चलोगी?'

'हाँ; चलूँगी।'

'पर देखो तो, तुम्हारी दशा क्या है!'

,ला, तू कपड़े तो ला।'

कपड़े खाट पर आ गए, तो एक साफ़-सी, पैमक-लगी धोती और एक रंगीन जाकट निकालकर दयावती ने कुमारी को दी, और कहा—'पहन ले।'

'मा, तुम्हें बुख़ार........'

'तू पहन तो सही, बुख़ार मुझे अब नहीं है।'

कुमारी ने धोती-जाकट पहन ली।

इधर दयावती ने एक बादामी रंग का लँहगा और सफ़ेद, मैली चादर अपने लिये छाँटी, और कहा—'अब इन बाक़ी कपड़ों को संदूक में रख दे।'

खाट से उतरकर मा कपड़े बदलने लगी।

हाय ! कैसी दुर्दशा है !

एक दिन वह था, जब नौकर-नौकरानियों को ऐसे कपड़े पहने देख दयावती लजाती थी, और एक यह आज का दिन है कि खुद उन्हें पहनने में कोई संकोच नहीं होता। उसके अंतर्प्रदेश में कैसी आग जल रही थी, और उसका हृदय किस प्रकार हाहाकार कर रहा था, यह मैं कैसे बताऊँ ! पर बड़े भारी अचरज और कौतुक के साथ यह तो मुझे बताना ही पड़ रहा है कि उसके मुख पर उस हाहाकारमयी अग्नि की तनिक-सी छाप दिखाई न देती थी; और उसके आचरण में सूक्ष्म-सा विकार भी नहीं खटकता था। हाँ, एक बात जरूर नोट करने योग्य थी। रह-रहकर वह छिपी नज़रों से बेटी के मुख को देखती थी, मानो भावों को पढ़ने या समझने की चेष्टा कर रही है।

और, जो कुछ उसने समझा, ठीक समझा। चार वर्ष से कुमारी लगभग क़ैदी की तरह इस गंदे घर में बंद है। इनी-गिनी बार वह बाहर निकली है। आज सखी से मिलने, घर से बाहर निकलने और........

और एक ख़ास व्यक्ति से मिलने की जैसी उमंग उसके मन में थी, वह क्या मुख़ पर फूटे बिना रह सकती थी ? कदापि नहीं कुमारी चाहे जितनी छिपाने की चेष्टा करे, अथवा मा की तकलीफ़ के कारण चाहे जितना मन समझाने का प्रयत्न करे, इसजमाना देखी हुई बुढ़िया और इस सर्वज्ञ लेखक की आँख से भला कब असल बात छिपी रह सकती है ? उसका वह बार-बार का इनकार और फिर सहसा भाग-दौड़ का उत्साह भला सारी कैफियत बयान करने के लिए क्या काफी नहीं ?

अंग-अंग शिथिल हो रहा है, हाथ-पैर टूटे जा रहे हैं, पर हाय ! क्या बेटी का इतना-सा मन रखने योग्य भी मैं अभा-

गिन नहीं ?

कोचवान दो वार आवाज दे गया है। मा-वेटी जल्दी-जल्दी कपड़े पहनने लगीं। कमजोरी और शिथिलता के कारण मा का अंग-अंग काँप रहा है। कुमारी ने कहा—'मा, मत चलो, फिर कभी चलेंगे। तुम्हारा ज्वर बढ़ जायगा।'

मा ने कुछ उत्तर न दिया। हाँ, छिपी नजर से एक बार फिर बेटी का उदास चेहरा देख लिया।

दोनों धीरे-धीरे आगे बढ़ीं बेटी का सहारा लेकर दयावती किसी प्रकार द्वार तक आई, और लम्बी-लम्बी साँसे लेती, निढाल हो कर बैठ गई।

क्या हुआ, ? क्या हुआ मा ?'

'ओफ ! परमात्मा, क्षमा ! ना बेटी, मेरे वस का काम नहीं, मुझ से नहीं चला जायगा।

बेटी ने श्री-हत होकर कहा—'मैंने कहा न था, और तब वह मा को सहारा देकर वापस सोने की कोठरी में आई।

बिना कपड़े उतारे दयावती खाट पर पड़ गई।

कुमारी ने ठीक तरह लिटाकर उसे ढक दिया।

कोचवान ने तीसरी वार आवाज दी। कुमारी बाहर जाने लगी। सहसा मा ने आँखें खोल दीं। धीरे से बोलीं—'सुन तो बेटी !'

'क्या ?'

'कहाँ जाती है ?'

'कोचवान से कह दूँ—जाय !'

ओफ़ कैसी छिपी हुई निराशा, कैसी अव्यक्त वेदना, कैसी अज्ञात विवशता उसके स्वर में थी। मा का हृदय एक बार काँप उठा।

धीरे से बोली—'मेरी एक बात मानेगी बेटी ?'

'क्या मा ?' कुमारी ने अचरज से पूछा ।

'तू चली जा ।'

'कहाँ ?'

'करुणा के घर ।'

'मैं ?—और तुम ?'

'मैं अब चंगी हूँ । एक लोटा पानी मेरे पास रख जा, शाम तक लौट आइयो । कोई चिंता नहीं । जा ।'

कुमारी क्षण-भर निस्तब्ध खड़ी रही, फिर बोली—'ना मा, यह कैसे हो सकता है । फिर कभी चलेंगे ।'

'नहीं, अभी जा, बेचारी लड़की इतना आग्रह कर गई है । अब न जाने से दुखी होगी । तू जा, कहना— मा को बुखार था । जा । कोई भी न जाय, यह अनुचित है ।'

'न मा, 'कुमारी ने संघर्ष में पड़ कर कहा—'मैं न जाऊँगी । बुरा मानने की क्या बात है । करुणा आवेगी तो समझा दूँगी ।'

'बेटी, जैसा कहती हूँ, वैसा कर । बड़ी स्नेह-पूर्ण लड़की है । उसकी बात टालते मुझसे नहीं बनता । देख तो, कितना प्रेम हम लोगों से करती है । जा, तू चली जा ।

'नहीं मा, मैं नहीं.......मैं उसे समझा दूँगी ।'

'ख़ैर, तेरी मर्जी, मगर मुझे झूठा बनना पड़ेगा ।'

बेटी सोच में पड़ गई—'झूठा बनना पड़ेगा ! क्यों ?'

'कल मुझसे वचन ले गई है ।'

'क्या बताऊं माँ, तुम्हें इस अवस्था में छोड़ कर जाते नहीं बनता । ज्यादा कहोगी, तो..........'

हाँ चली ही जा, जल्दी लौट आइयों ।'

अच्छा...........'

'हाँ, एक लोटा पानी मेरे पास रख जा।' मा ने कहा—'और देखियो—' जब लोटा पानी रखकर बेटी जाने लगी, तो बोली—'करुणा की मा बहुत बीमार हैं। मेरी तरफ से राजी-खुशी पूछियों, और कहियो, बुखार से लाचार हो गई, नहीं मैं ही आती। फिर किसी दिन आऊँगी। मुझे उनकी बीमारी का हाल सुनकर बड़ा दुख हुआ।'

'अच्छा।'

'हाँ, जरा जल्दी लौ—'

कोचवान की चौथी आवाज सुनाई दी, और कुमारी जल्दी से बाहर निकल गई।

इसे कुमारी की कमजोरी तो मानना ही पड़ेगा! आपकी क्या सम्मतिहै?

(६)

गाड़ी घड़- घड़ करती कोठी पहुंच गई।

बड़ी आलीशान, बड़ी सुन्दर और बड़ी सुहानी जगह है।। गोल बरांडा है, ऊँचे-ऊँचे कमरे हैं, बाहर बगीचा है।, सीढ़ियों पर फूलों के गमले हैं। हवा चलती है, तो ऐसा लगता है, मानों सुगन्ध की वर्षा हो गई।

जब करुणा के पिता ने यहकोठी ली थी, चार साल हुए, कुमारी मैट्रिक में पढ़ती थी, तब गृह-प्रवेश की रस्म में आई-आई वह अब आई है। काफी परिवर्तन हो चुका है। एक तरफ नौकरों के लिए कच्चा मकान बन गया है। गाड़ी है, तो अस्तबल कैसे न बनता? बगीचा तैयार हो गया है, पेड़ फलों से लदे पड़े हैं. अंगूर की बेल बढ़कर बरांडे के दवाजों पर झुकी पड़ती है।

जिस उत्साह से आई थीं कुमारी के मन का वह उत्साह

सहसा नष्ट हो गया। पर देखिए, ठंडी साँस उसके मुँह से नहीं निकली, एक प्रकार का रौब और संकोच उस पर छा गया, और वह कुछ परेशान-सी दिखाई देने लगी।

गाड़ी अहाते में घुसी ही थी, और पहियों की आवाज मुश्किल से भीतर पहुंची होगी कि हिरनी की तरह छलाँगें भरती, उछलती-कूदती करुणा बरांडे में दौड़ आई। सिर खुला हुआ है, बाल अस्त व्यस्त हैं, शरीर पर एक गुलाबी, रेशमी साड़ी है, पैरों में पतला स्लीपर है, और हाथ न मालूम किस चीज में सनकर काले हो गए हैं, गाड़ी की आहट सुनकर हाथ धोने तक का सब्र उसे न हुआ।

'अरे मा'—गाड़ी के पास पहुँचकर उसने पूछा—'अम्मा नहीं आई?'

'नहीं' कुमारी के स्वर में अपने घर के उस पहले दिन के अधिकारपूर्ण स्नेह की जगह कुछ संकोच और एक प्रकार की दबी हुई नम्रता थी। 'सहसा आज उसे ज्वर चढ़ आया। बल्कि मैं भी नहीं आ रही थी, उन्होंने जिद करके भेजा है।'

'खैर!' कहकर यह चंचल लड़की बुढ़िया मा की और उसकी बीमारी की बात भूल गई, और सखी की बगल-से-बगल मिलाए, उसका हाथ पकड़े, बरांडे की तरफ़ चली।

मा के प्रति करुणा की यह उपेक्षा देखकर, अगर्चे मैं जानता हूँ, उपेक्षा न होकर यह उसकी स्वाभाविक लापवाही, उत्साह और हर्ष जनित जिज्ञासा के अभाव का कारण था, कुमारी एक बार अप्रतिभहुई। पर अपने उस भाव को प्रकट कैसे करे? करुणा ने उसके घर जाकर तो ऐसी भूल की ही नहीं है, जो झिड़ककर, डाँटकर या 'पगली' बताकर उसे समझा दे, अब तो वह स्वयं

उसके घर पर आई है, और घर भी कैसा?—राजों-महाराजों के मुक़ाबले का! भला इस जगह पैमक-लगी मैली धोती पहने हुए यह दीन-हीन कुमारी कैसे उस वैभव और ऐश्वर्य की एक-मात्र स्वामिनी, क़ीमती रेशमी और झलक-झलक चमकती साड़ी पहने हुए करुणा को डाँटने का साहस करे?

तीसरी सीढ़ी पर पैर रखते हुए करुणा ने कहा—'बड़ी बाट दिखाई तुमने, मुझे तो निश्चय हो गया था; अब तुम न आ....' कहते-कहते उसने, जीभ दबाकर कहा—'मुझे तो बड़ा आश्चर्य हो रहा था, इतनी देर क्यों लगी?'

कुमारी चुप है। मुँह से शब्द निकालने की उसकी इच्छा नहीं होती। कुछ तो वैसे ही कम-बोला है, पर यहाँ आकर तो जैसे उसकी जीभ ऐंठी जा रही है।

करुणा ने उसकी बग़ल में धीरे से गुदगुदी की, और कहा—'कहो तो, कुछ बोलो तो, देवीजी कैसे इतनी देर लग गई?'

प्रश्न बहुत साधारण था, और स्वयं करुणा भी उसकी तथ्य-हीनता समझती थी पर वह तो कुमारी का मुँह खोलना चाहती है, उसे प्रश्न से क्या ग़र्ज़? प्रश्न में महत्व ही क्या था? अगर कुमारी दुहरा देती—'मा की तकलीफ़ के कारण मैं आना न चाहती थी; उसने जब बहुत आग्रह किया, तो आई हूँ।' या केवल इतना ही कह देती कि 'यों ही देर हो गई', तो अवश्य बात यहीं-की यहीं रह जाती, और एक ख़ास चीज की तरफ़ करुणा का ध्यान आकृष्ट न होता।

पर कुमारी होश में कहाँ है? देखिए, उसने लड़खड़ाती जीभ से क्या मजेदार जवाब दिया है। कहती है—'ज़रा कपड़े-वपड़े पहनने में देर हो गई!'

सहसा करुणा की नज़र कुमारी की धोती पर पड़ी, और

पलक मारते उसके चेहरे पर जो भाव प्रस्फुटित हुआ, हम खूब गौर के साथ उसे देखने पर भी आपको समझाने में असमर्थ हैं। दुःख, खेद, दया, सहानुभूति, ग्लानि, घृणा-युक्त नहीं, और लज्जा के सम्मिलित धक्के से उसका हृदय एक बारगी द्रवित हो उठा, मुख विवर्ण हो गया, और आँखों में आँसूओं के अर्द्धांश या चतुर्थांश चमकने लगे।

हा कुमारी! आज क्या इस मैली, सूती, पुरानी धोती को भी तुझे चाव के साथ सम्हालकर देर लगाकर पहनने की आवश्यकता पड़ी?

करुणा के इस प्रकार सहसा चुप हो जाने की तरफ़ अवश्य कुमारी ने लक्ष्य दिया, पर जो भाव उसके मन में उत्पन्न हुआ था, उसे वह न समझी। वह समझी, मेरा अन्यमनस्क भाव देख, कर करुणा असंतुष्ट हो गई है।

देखा आपने, अपने घर पर, कुछ दिन पहले तक, जो कुमारी करुणा के गाल पीटकर और उसे रुलाकर भी उसके असंतुष्ट होने की आशंका या चिंता न करती थी, आज, इस समय, कैसी दुर्बल-हृदय और दीन बन गई है?

हाँ, तो 'करुणा असंतुष्ट हो गई है! मुझे अपना अन्यमनस्क भाव त्यागकर उसकी प्रसन्नता और उमंग में योग देना चाहिए', यह विचारकर कुमारी बोली—'और करुणा—'

आँसुओं के रत्ती-भर जल को पलकों में छिपाकर करुणा ने अपने बड़े-बड़े नेत्र कुमारी की तरफ़ उठाए।

कुमारी पूछती थी—'प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र महोदय....' पर न पूछ सकी। क्यों न पूछ सकी? यह आप स्वयं अनुमान कीजिए, या मौक़ा मिले, तो क़सम दिलाकर उसी से पूछ लीजिए, हमें तो अपनी सर्वज्ञता पर भी विश्वास नहीं रहा, और इसीलिये हमें

जो मालूम हुआ है, उसे हम इस डर से आपको नहीं बता सकते कि कहीं इस बेचारी कुमारी के साथ अन्याय न हो जाय।

बस, हम तो आपको यही बता सकते हैं कि वह प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र की बात पूछकर करुणा का उपहास करना चाहती थी, पर झट से बात फेर गई; शायद स्वयं उपहासास्पद बनने का भय हो....या राम-जाने क्या हो ....हम यह नहीं कहेंगे।

हाँ, तो कहने लगी—'और करुणा—हाँ, तुम्हारी मा कहाँ हैं?'

'मेरी मा?'—करुणा सहसा कहने को हुई, 'मेरी मा को तुम अभी अपने घर छोड़कर आई हो', पर कुमारी के स्वर में प्यार या हास्य का अभाव देखकर उसने सीधी-सादी आवाज़ में कहा—'मेरी मा को तो फ़ालिज आ गया है, हाथ-पैर बेकार पड़ गए हैं, धड़ शिथिल हो गया है। बस, मुँह से थोड़ा-बहुत बोल सकती हैं क्यों, क्या मिलने चलोगी?'

कुमारी के 'हाँ' कहने पर करुणा उसका हाथ पकड़े हुए दूसरी तरफ़ घूम गई।

एक सजे-सजाए छोटे कमरे में, कोमल शय्या पर, करुणा की मा निश्चल पड़ी हुई थी। पतला-सा, सुन्दर पंखा हाथ में लिए एक शुक्लवसना दासी, पत्थर की मूर्ति की तरह, सिरहाने खड़ी थी, और दर्वाजे की तरफ़ पीठ किए कोई प्रौढ़ पुरुष, झुके हुए, किसी औषधि या मिश्रण रोगी के मुँह में बूँद-बूँद टपका रहे थे।

दोनो सखियों के पैरों की आहट सुनकर प्रौढ़ पुरुष ने मुँह फिराया। कुमारी ने पहचान लिया, करुणा के पिता थे।

औषधि पिला चुके थे। उन्होंने बर्तन दासी के हाथ में दे दिया, माथे पर से चिंता और उद्वेग की शिकन दूर की, और कुमारी के प्रणाम करने के पूर्व ही हँसते हुए बोले—'ओहो!

कुमारी बेटी आई हैं। कहो बिटिया, अच्छी हो?'

कुमारी ने संकुचित होकर नमस्कार किया।

करुणा के पिता ने सिर पर हाथ रखकर कुमारी को आशीर्वाद दिया, और कहा—'बड़े दिनों बाद आई बिटिया! कहो, तुम्हारी मा तो प्रसन्न हैं? अच्छा, क्या इन मा को देखने आई हो? क्यों, भूल तो नहीं गईं—जब तुम छोटी-सी करुणा के साथ आया करती थीं, और इन्हें हज़ारों बार 'मा! मा!!' कह-कर जल-पान का सामान मांगा करती थीं? और करुणा की मिठाई छीन-छीनकर खाया करती थीं? और क्यों, भूली तो नहीं हो, जब अभियोग उपस्थित होने पर तुम्हारी यह मा सदा तुम्हारे पक्ष में फ़ैसला देकर न्याय का तिरस्कार और अपने अधिकार का दुरुपयोग किया करती थीं? कहो बेटी, वे बातें तुम्हें भूली तो न होंगी? कैसे भूल सकती हो?—अच्छा किया बेटी, जो आ गईं! मिल लो, बोल लो, अपनी मा को विदा दे दो, बिटिया, जिसमें अंतिम समय में उन्हें कष्ट न हो........।'

एक स्वर में और एक साँस में उपर्युक्त वक्तव्य समाप्त कर करुणा के पिता, आँख पोंछते हुए, बाहर चले गए।

करुणा के पिता रायबहादुर रामकिशोर का थोड़ा परिचय दिए बिना नहीं बनेगा।

पिता शहर के नामी रईस थे, और खुद बड़े भारी वकील हैं 'हैं' क्या, इन्हें भी 'थे' ही कहना चाहिए। अब तो एक मुद्दत से इन्होंने वकालत छोड़ ही दी है। पिता की भारी जायदाद और दौलत को पुत्र ने खोया नहीं, उसमें वृद्धि की। वकालत खूब चमकी, और खूब चली। अब उनकी संपन्नता का अनुमान आप इसी से कर लीजिए कि छ हज़ार रुपया महीना तो जायदाद का किराया ही वसूल होता था। कई सन्तानें हुईं, पर अब ले-देकर

एक यह करुणा बची है। दो जवान बेटे कालेज में पढ़ते-पढ़ते, कई वर्ष हुए, जमना में डूब गए। बड़े के व्याह की बात गोत होरही थी। बस, इस सदमे ने उनकी कमर तोड़ दी। ओफ़्! दो-दो जवान, कड़ो- से बेटों का इस प्रकार एक साथ अकाल-मृत्यु को प्राप्त हो जाना—जरा सोचिए त—कैसा भयानक आघात होगा!

होने को वकील हैं पर प्रकृति बड़ी भावुक है, बेटों की मृत्यु के बाद पागल-से हो गए, संसार से वैराग्य हो गया, एक बार घर-बार छोड़कर कहीं चल देने की ठानी।

पर जब शोक का वेग हल्का हुआ, लोगों ने समझाया, उज्ज्वल-मुख बेटी करुणा सामने आई, तो बेटों का सारा मोह उन्होंने बेटी में केन्द्रित कर दिया, और नीरस जीवन को भरसक सरस बनाकर अभागे रामकिशोर दिन बिताने लगे।

खुद तो इस तरह सह गए, पर गृहणी न सह सकीं। बेटी का क्या, उस पर कैसे सबर बांधे, वह तो पराए-घर की वस्तु है। हाय! दोनों जवान बेटे हँसते-खेलते, जलते चिराग, खिले हुए फूल तो सदा के लिए न-जाने कहाँ विलीन हो गए! उन्हें अब किस प्रकार पाए!!

बस, माता ने उसी दिन से खाट पकड़ ली।

मेरे पाठकों में जो वयस्क हैं, प्रौढ़ हैं, वृद्ध हैं, वे जानते हैं, इस अवस्था में स्त्री के विछोह की कल्पना कैसी कष्टकर होती है! वह पुराना स्नेह, वह जवानी के चोचले, वह मान-भंग के अनोखे प्रयोग, वह उन्मत प्रणय के मीठे-मीठे राग, सब अपनी अलग-अलग मूर्ति बनाकर सामने खड़े हो जाते हैं। इस अवस्था में ये सब कैसी संकटमय परिस्थिति उत्पन्न कर देते हैं—भुक्त-भोगी के अतिरिक्त उसे कौन समझ सकता है, और कौन

करुणा ने एक आलमारी खोली, और कहा—'लो बहन, पसंद करो!'

'मैं पसन्द करूँ ? अरे, तुम पहनोगी, तुम्हीं पसन्द करो।'

'वाह! पर अपने लिए.......'

'मै ? न, मैं न बदलूंगी।'

'क्यों ?' कलेजा ज़ोर से धड़कने लगा।

'न, मेरी धोती ज्यादा खराब नहीं हुई है, ज़रा धोकर ठीक किए लेती हूँ।'

'यह कैसे ? वाह! सारी धोती तो मैली.......न, न, खराब हो गई है।'

जल्दी में असल बात आखिर निकल ही गई!

करुणा ने देखा, काम बिगड़ रहा है। झट-झट नई धोतियों की थई-की-थई निकाल-निकालकर पटकने लगी, और कहने लगी—'वाह! यह कैसे हो सकता है! जब धोतियाँ मौजूद हैं, तो क्यों खराब धोती पहनो! वाह.......लो जल्दी से छांटो—क्यों, यह संदली रंग तुम्हें पसन्द है ?'

वह! कैसी कैंजी साड़ी है। पाठक चाहे बुरा मानें, मैं तो उसकी कमजोरी को छिपाऊँगा नहीं, एक बार तो उसका जी ललच उठा! परन्तु कहने लगी—'ना करुणा, मै धोती न बदलूँगी, तू बदल डाल!'

'क्यों ?'

'देख तो—कहीं खराब भी हुई है; ज़रा-सा धब्बा लगा है। ना, मैं नहीं बदलने की।'

'नहीं बदलने की ?'

'नहीं।'

'तो मैं भी नहीं बदलती।' कहकर करुणा क्रोध से उन नई, क़ीमती साड़ियों को उठा कर इधर-उधर फेंकने लगी।

कुमारी ने उसका हाथ पकड़ा, और कहा—'ऐं! यह क्या पागलपन?'

'तो तुम बदलतीं क्यों नहीं?' कहती-कहतीं करुणा रो पड़ी। कुमारी न सखी को छाती से लगा लिया, और प्यार से उसका गाल चूमकर कहा 'धत् तेरे की, मैं तो हँसी करती थी, आप....। वाह रे तरा रोना! पगली कहीं की!'

करुणा ने गुनगुनाकर कहा—'तो पहनो!'

'ला बाबा दे।'

'कौन-सी दूँ?'

कहकर उसने कुमारी की तरफ़ देखा, और उसे हँसते देख, बच्चों की तरह ठिनककर हँस पड़ी!

आख़िर एक साड़ी पसन्द हुई। अब करुणा बोली—'कमीज़ किस रंग की निकालूं? जल्दी बोल!'

साड़ी पहनते-पहनते कुमारी ने रसिकता से कहा—'अच्छा, एक बात बता?'

सारी जल्दबाजी भूलकर करुणा ने सरलता से पूछा—'क्या?'

'साहब बहादुर से इतना क्यों डरती है?'

कुमारी ने देखा, करुणा फिर पटले की तरह श्री-हत हो गई, मुर्झा गई।

फिर भी उसने पूछा—'बता! बता!'

करुणा रुआसी होकर बोली—'देख, मैं फिर रो पड़ूंगी।'

'अच्छा तो रो !' कुमारी ने आधी पहनी हुई साड़ी उतारते हुए क्रोध का प्रदर्शन कर कहा—'मैं तेरी साड़ी-वाड़ी नहीं पहनने की !'

'अरे बाबा, अरे !' करुणा ने घबराकर कहा—'अच्छा-अच्छा बोल, क्या कहती है ?'

'पहले यह बता, तू साहब बहादुर का नाम सुनकर इस तरह बिदकती क्यों है ?'

'पहले-पीछे नहीं', करुणा ने अनमनी होकर कहा—'एक प्रश्न पूछ लो, कोई-सा पूछो।'

'अच्छा, यही बता।'

'और कुछ नहीं बताऊँगी।'

'अच्छा।'

अब उसने हँसकर कहा—'अरे वाह ! मैं बिदकती कहाँ हूँ-यह तो यों ही..........'

'झूठ !' कुमारी ने डाँटकर कहा—'तो ले, साड़ी उतारती हूँ।'

'फिर वही ! अच्छा, क्या कहती है ? बोल !'

'अब बार-बार प्रश्न करूँ ? बता।'

करुणा ने सिर नीचा कर लिया, और सोच-साचकर बोली-'तू 'साहब-साहब' मत कहाकर !'

'क्यों ?'

'मुझे चिढ़ छूटती है।'

'क्यों ?'

'साहब कहाँ, हाँ दस जरद नाटक एन इल्लिट्रेट धन।'—

जोड़े जा सकते हैं! कुमारी के मुँह से एक हल्की-सी ठन्डी साँस निकल ही गई।

'माँग आई!"—करुणा ने स्याही की शीशी कमीज की जेब में डालकर कहा—'अब तो नाराज नहीं हो?'

कुमारी ने गंभीर होकर कहा 'ठीक है!'

करुणा ने समझा—बात समाप्त हो गई।

पर नहीं कुमारी के मन का असंतोष नष्ट न हो सका।

'आओ, जरा बगीचे में टहलें! माली से कह कर केवड़ा खुदवाती हूँ—तैयार हो गया!"

"चलो!"—कुमारी अब कोई ऐसी बात नहीं कहना चाहती, जिससे करुणा दुखी हो।

करुणा पास आई, और कमीज की जेब से स्याही की शीशी निकालकर आप-ही-आप बोली—'इसे यहीं रख दूं!' फिर सहसा उसे जेब में डालकर कहने लगी—'चलो, लौटकर दफ्तर में रख दूंगी; यहाँ कोई नौकर का छोकरा तोड़ देगा।'

दोनों सखियाँ बाग में टहलने लगीं। बातें भी हो रही थीं। कुमारी ने सूरज की तरफ देख कर कहा—'मुझे जल्दी ही लौटना होगा।'

'वाह! क्यों? आज नहीं, कल जाना। इतने दिन बाद....'

कुमारी ने कड़ी बात न कहकर साधारण भाव से कहा—'माँ बीमार जो है!'

'ओह!' भुलक्कड़ करुणा ने कहा—'क्या तकलीफ है?'

'कहा तो—ज्वर से पीड़ित हैं; अपने वचन का पालन करने के अभिप्राय से ही उन्होंने मुझे भेज दिया है, अन्यथा....'

'अरे ! क्या वहुत तकलीफ है ?' करुणा ने साग्रह पूछा।

आश्चर्य ! कैसी अद्भुत है ! अपनी माँ से ऐसी विरक्ति और दूसरी पर इतना स्नेह ! कुमारी ने सोचा—'कृत्रिमता तो नहीं !' पर नहीं, वह भोला चेहरा कपट की छाया से आच्छादित न था, उन हिरनी के बच्चे के-से जिज्ञासु नेत्रों में छल की गुंजाइश नहीं थी !

कुमारी एक बार मुग्ध हो उठी ! कैसी सरलता है !

बोली—'ज्वर से शिथिल हो रही थीं.......'

करुणा ने कमीज की जेब से स्याही की शीशी निकाल ली थी, और बच्चों की तरह उसे इस ह थ से उसमें और उससे इसमें उछाल रही थी।

....सहसा यह क्या हो गया ! शीशी का कार्क खुल गया, और उसकी गाढ़ी, नीली स्याही थल्-थल् करके बिखर गई। वह कीमती बादामी साड़ी और कमीज स्याही से तर हो गई, कुछ स्याही कुमारी की उस पेमक-लगी घटिया धोती पर भी गिर पड़ी।

उछलकर करुणा पीछे हटी, और आश्चर्य और खेद का प्रदर्शन करती हुइ बोली—'छिः ! मैं कैसी मूर्ख हूँ। तुम्हारी धोती भी खराब कर दी ! चलो, बदल डालो।' फिर सहसा जोर से हँसती हुई कहने लगी—'शायद तुम्हारी नजर....'—रुककर दाँत-तले जीभ दबाई, और बोली—'चलो, कपड़े बदलें, जल्दी चलो, उन लोगों के आने का समय हो रहा है !'

अपनी वह मैली धोती खराब हो जाने का जितना दुःख कुमारी को हुआ, वही जानती थी। क्षोभ और खेद से उसकी आँखों में आँसू छलछला आए, हाय ! अभागिनी को दूसरे घ

कपड़ा पहनना पड़ेगा।

पर इस संकटमय स्थिति में भी करुणा का अन्तिम वाक्यांश सुनकर वह सहसा रोमांचित हो उठी। कितनी देर से वह प्रश्न उसके मन में चक्कर लगा रहा है! कितनी देर से वह अधीरता पूर्वक उनकी बाट तक रही है, कितनी देरसे.......'

ओफ्! उस विद्वान से भेंट होगी!

दोनों चलीं। अब उसे पर्याप्त साहस प्राप्त हो गया था। करुणा ने उसका थोड़ा अपराध किया है। अब उसके समक्ष कोई छोटी-मोटी दुर्बलता प्रकाशित करने से उसे हास्यास्पद बननेकी आशंका नहीं है। बोली—'हाँ तुम्हारे प्रोफेसर साहब कब पधारेंगे'

करुणा ने कहा—'साहब?—हूँ, आप तो शायद साहब ही आते ही होंगे। तीन बजे की बात है।'

कुमारी बोली—'साहब सुनकर क्यों चौंकीं? अरे, वह साहब, तुम मेम।'

सहसा करुणा का मुँह उतर गया बोली—'चलो, झटपट कपड़े बदल डालें।'

कुमारी ने रसिकता से कहा—'ओहो! अभी से साहब का इतना डर है।'

उच्छृंखल, चंचल करुणा उदास होकर बोली—'जीजी, हँसी अच्छी नहीं लगती। चलकर पहले कपड़े बदल डालो। ये बातें तो फिर होती रहेंगी। हा! हा! बुरा मान गईं? अरे बाबा, चाहे जितनी हँसी कर लेना, पहले कपड़े बदल डालो।'

परन्तु विचारशील कुमारी बुरा न मानकर सहसा गम्भीर आश्चर्य में डूब गई थी। यह कैसा भाव! वह उपेक्षा क्यों? यह

तो कृत्रिम नहीं, खिलने की जगह यह मुर्झा क्यों गई? मुझे भ्रम तो नहीं हुआ?

अब उस भ्रम को दूर करने के अभिप्राय से बोली—'नहीं, बुरा तो नहीं मानी, यह सोचती हूँ कि तुम्हारे साहब बड़े ही रोबदार, जबर्दस्त हैं, जो तुम-सी....उनसे इस प्रकार काँपती है।'

पर करुणा का भाव हास्य-पूर्ण न हुआ, न वह गंगा-जमनी हल्की मुसकान दिखाई दी, न गर्दन झुकाकर मीठी लज्जा का प्रदर्शन। बस, उदास होकर उसने इस प्रकार सिर झुका लिया, मानो अपने बड़प्पन का दुरुपयोग करके कुमारी ने कोई अनुचित बात उससे कह दी है।

साँस रोककर और पूरी आँखें खोलकर कुमारी ने सखी के इस अभूतपूर्व भाव पर लक्ष्य दिया, और फिर बिना कुछ बोले उसके साथ-साथ चल दी।

सखी को साथ लिए करुणा कपड़ा बदलने के कमरे में गई। कई ऊँची-ऊँची शीशे की आलमारियाँ साड़ी, जैकेट, क़मीज इत्यादि कपड़ों से भरी हुई थीं। सखी का वैभव देख आज पहलेपहल कुमारी को अतीत काल की याद आ गई! उसकी आलमारियाँ भी इतनी ही बड़ी-बड़ी थीं, उसके भी इसी तरह बे-शुमार वस्त्र थे, उसने भी कभी क़ीमती-से-क़ीमती कपड़ों के लिए इतनी ही लापरवाही दिखाई थी।

और आज?

हाय! आज—इस पेमकल्लगी, पुरानी [illegible] के बिगड़ने से उसे एक बार कितना कष्ट हुआ है।.......!

'पेमकल्लगी' बोली! मैली! गंदी! पुरा[illegible]

[illegible] मन में करुणा एक नवीन भाव की सृष्टि हुई।

केवल मैट्रिक पास किया है !'

सहसा करुणा ने कहा—'लेकिन ठाकुर साहब, योग्यता से आधुनिक 'क्वालिफिकेशंस' का कोई सम्बन्ध नहीं। आपकी आध्यात्मिक योग्यता बहुत बड़ी-चढ़ी है। शायद आपने '........' पत्रिका में श्रीमती कु० महाराया के लेख पढ़े हों ! आप ही वह श्रीमती कुमारी हैं !'

'श्रीमती कु० ?—श्रीमती कु० ?'—रामशरण ने चौंककर कहा—'ओह यस, याद आ गया ! प्रोफ़ेसर नकुलचन्द के घर पर आज ही तो—ठीक है !—अच्छा !—आप ही श्रीमती कु० हैं ?—गीता के सबंध में अभी हाल में आपका एक लेख प्रोफ़ेसर साहब ने मुझे पढ़कर सुनाया था। मैं तो खैर मूर्ख आदमी हूँ, मगर खुद प्रोफ़ेसर साहब भी मुक्त कंठ से उसकी प्रशंसा कर रहे थे।'

कुमारी का हृदय पेंगें ले-लेकर उछलने लगा, और न-जाने कैसे और क्यों—क्षण-भर में ही उसके मन में ठाकुर रामशरण के प्रति उत्पन्न हुई विरक्ति नष्ट होकर एक अद्भुत पवित्र स्नेह का प्रादुर्भाव हो गया। मुस्कराकर कहने लगी—'वाह ! आप अपने को मूर्ख क्यों कहते हैं ?'

'मूर्ख नहीं तो क्या हूँ ?'—रामशरण ने उदासीन होकर कहा—'एक बार एफ़० ए० में फ़ेल हुआ, दो बार बी० ए० में। और अब की बार पास भी हुआ तो थर्ड डिवीज़न में।'

'वाह ! यह भी कोई मूर्खता का लक्षण है ! ना ठाकुर साहब आपको अपनी पहली असफलताओं पर इतना दुखी न होना चाहिए।'

'नहीं, दुखी तो नहीं। ठाकुर साहब ने मुस्किराकर कहा—'आप-जैसी विदुषी के दर्शन करके भी दुखी रहना बड़े दुर्भाग्य

की बात है।...मैंने सुना है, आप कोई पुस्तक लिख रही हैं ?'

'पुस्तक ? आपको कैसे पता लगा ?'

'प्रोफेसर साहब कहते थे।'

'अरे ! प्रोफेसर साहब ?.......'

'जी हाँ, आपका वह गीता-संबन्धी लेख—क्या नाम उसका ! शायद गीता की व्यापकता—पढ़कर वह आपका पता पाने को अधीर हो उठे। आपको शायद मालूम हो—उनके लेख भी उस पत्रिका में छपते हैं.......'

कुमारी ने सिर हिलाकर 'हाँ' कहा।

'हाँ, तो इन्होंने पत्र लिखकर संपादक से आपका परिचय और पता पूछा। आज सुबह ही तो उत्तर आया है। याद नहीं आता, कौन-सी गली लिखी थी, इसी शहर का पता दिया था। मैं आपका नाम सुनते ही चौंका था, पर यह सोचकर रह गया कि एक नाम के दो व्यक्ति क्या नहीं हो सकते ? जब इन्होंने (करुणा ने) श्रीमती कु० कहा, तो याद आया, पत्रिका में आप अपना पूरा नाम नहीं छापवाती हैं .... ।"

रामशरण यह सब कुछ कह रहा है, पर करुणा तो होश में नहीं है। उसका तो शरीर रोमांचित हो रहा है, कुर्सी से उछल पड़ने को मन होता है, और एकांत में जाकर खूब नाच-नाचकर हँसने-रोने की इच्छा होती है ?

पर ये सब भाव उसने रोके और धीरे से पूछ बैठी—'मगर यह पुस्तक लिखने की बात.......''

'हाँ, वही तो' रामशरण ने कहा—"शायद आपने संपादक को इस बात की सूचना दी होगी। उन्हीं ने अपने पत्र में आपके परिचय के साथ-साथ लिखा था। बल्कि प्रोफेसर साहब तो कहते थे, यह

इस पते पर जाकर आपसे भेंट करें....”

ओफ़! कुमारी को कैसा वीभत्स हर्ष हुआ?

अब वह क्या बोले?—जीभ तो उसकी खुलती ही नहीं?

पर यह करुणा के हृदय में आग-सी क्यों दहक उठी? उसके नेत्रों में यह रोष कहाँ से आ गया? उसके चेहरे का रक्त सुख र कहाँ चला गया? अस्थिरता और आवेग से उसका अंग-अंग क्यों फड़कने लगा?

आखिर रहा न गया। कहने लगी—“क्यों कुम्नो! अहा हा! —कैसा हर्ष हो रहा है?”

इस वाक्य में कितना व्यंग्य था, कितना उपहास था, कितना विद्रूप था, और कितना गहरा क्षुप था! क्या आप उसकी कल्पना कर सकते हैं? क्या आप उसे समझ सकते हैं? क्या आप ....?

बला से, आप समझें या न समझें, पर कुमारी कैसे न समझे? सहसा नश्तर लगाकर किसी ने उसके शरीर का तो मानो सारा रक्त खींच लिया! या दोनो गालों पर किसी ने कस-कसकर दो तमाचे मार दिए। या पहाड़ की चोटी पर चढ़ाकर किसी ने उसे घृणा-पूर्वक धक्का दे दिया!

मेरे ईश्वर! क्षण-भर में यह क्या-से-क्या हो गया!

भयानक लंज्जना, व्यथा और कष्ट से अधीर होकर कुमारी ने सिर झुका लिया—झुका क्या लिया! पलक मारते महफ़िल जैसे श्मशान बन गई। कुमारी अब किसी प्रकार मर जाय, गड़ जाय अदृश्य हो जाय!

इधर करुणा ने-उस चंचल, उच्छृंखल आज्ञाकारिणी करुणा ने—देखा, वार बहुत गहरा हुआ, और बात भावुक सखी के

हटकर उसने करुणा से पूछा—'यह कौन सज्जन हैं ?'

'मेरे एक सहपाठी हैं। इसी वर्ष बी० ए० पास किया है। दो वर्ष से बेचारे फ़ेल हो रहे थे। इन्हें भी निमंत्रण दिया गया है।'

कुमारी ने सरोष कहा—'तुमने मुझको पहले क्यों नहीं कहा ?'

'क्या ?'

'कि किसी अपरिचित व्यक्ति को भी निमन्त्रित किया गया है। मैं ऐसी बे-पर्दगी.......। कोई सुने, तो.......'

'कहती क्या हैं आप देवी जी ? कुछ होश भी है ? क्या मैंने आपसे यह नहीं कहा कि आज कोई और भी निमन्त्रित किए गए हैं ?'

'तो', कुमारी ने मुस्किराकर कहा,—'वह 'और कोई' तो आपके साहब—न, डिस्ट्रेट—बहादुर थे न ?'

'तो महाशया, वे आपके लिए अपरिचित नहीं हैं क्या ? या इनसे घूँघट काढ़कर बातें करतीं ?'

बेशक, बात तो सच ही है ; इस समय तो सचमुच कुमारी को चकराना पड़ा। अगर लेखादि पढ़े हैं, तो इससे क्या हुआ, कोई व्यक्तिगत भेंट-परिचय तो नहीं है ! कुमारी से उत्तर देते न बना।

अपनी विजय पर मुस्किराकर करुणा ने कहा—'चलिए, मेरी पर्दानशीन देवी जी, यह महाशय भी कोई गुंडे या बदमाश नहीं; अच्छे सज्जन पुरुष हैं ! इनसे भेंट करके भी आप अवश्य प्रसन्न होंगी।'

कुमारी ने और कोई उपाय न देखकर पूछा—'अच्छा,

और कौन-कौन आवेगा ?'

'बस, तुम्हारे वही 'और कोई' आएँगे।'

'बस ?'

'हाँ, बस।'

तब कुमारी, अपने भरसक लज्जा और संकोच दूरकर, सखी के पीछे-पीछे उस कमरे में प्रविष्ट हुई।

सामने गद्देदार कुर्सी पर एक हृष्ट-पुष्ट, बल्कि स्थूलकाय, साँवला युवक बैठा कुछ पढ़ रहा था। हैट उसने उतारकर छोटी मेज़ पर रख दी थी। सिर के बाल उसके काले, चिकने, पतले और घुँघराले, भौंहें घनी और मोटी, आँखों की पुतलियों में सूक्ष्म-सा पीलापन, ऊपर का ओष्ठ पतला, गर्दन बगुले की-सी—मुड़ी हुई—छाती निकली हुई और हाथ-पैर लंबे-लंबे थे। पोशाक उसकी अंग्रेज़ी ढंग की थी।

कमरे में पहुंचकर करुणा ने दोनो अपरिचित व्यक्तियों का परिचय कराया। नाम उनका था—ठाकुर रामसरण सिन्हा बी० ए०, एक ज़मींदार के पुत्र हैं, स्वयं शहर में रहकर पढ़ते हैं, परिवार के लोग देहात में हैं।

रामशरण ने कुमारी से हाथ मिलाकर निस्संकोच भाव से कहा—'आपको देखकर सुखी हुआ!'

कुमारी के मुँह से शिष्टाचार का कोई शब्द नहीं निकला, उसने सकुचाकर सिर झुका लिया।

कलाई पर बँधी हुई घड़ी की तरफ़ देखकर रामशरण ने करुणा को लक्ष्य करके कहा—'कहिए, प्रोफ़ेसर साहब अभी नहीं पधारे ?'

करुणा ने लापरवाही से सिर हिलाकर कहा—'ना!'

'किसी दार्शनिक तत्व के विवेचन में लगे होंगे!' कहते-कहते रामशरण बे-ज़रूरत 'ही-ही' करके हँस पड़े।

कुमारी को रामसरण का यह परिहास गंदा लगा। करुणा भी उसकी हँसी में पूर्ण सहयोग न देकर धीरे से मुस्करा पड़ी।

बात जमी नहीं, यह देखकर रामशरण कुछ अप्रतिभ हुए। क्षण-भर बाद ही बोले—'और कहिए, आपके पिताजी कहाँ हैं?

'आते होंगे। अभी तो घर में ही थे।.......कितना बज गया है?'

रामशरण अभी घड़ी देख चुका था, तो भी अब पुनः देखी और जल्दी से बोला—'इसमें तो तीन बजकर चौदह मिनट हुए हैं।.......देखिए, इसके अनुसार मैं तो ठीक समय पर ही आ गया।.......ऐसा मालूम होता है, मेरी घड़ी कुछ 'फास्ट' है। असल में ये घड़ियाँ कुछ महीने तक 'फास्ट' चलती ही हैं, बिल्कुल नई ही तो है, आज ही खरीद डाली। एक मित्र के साथ घूमने चला गया। रास्ते में एक घड़ियों की दूकान पर यह चीज़ देखी, तो लट्टू हो गया। ढाई सौ रुपया दाम तो कुछ ज़्यादा जँचा, मगर चीज़ नज़र पर चढ़ गई थी, छोड़ने को जी न चाहा।.......शक्ल-सूरत तो अच्छी है, अब देखूँ, काम कैसा करती है!'—कहते-कहते वह पुनः हँसने लगा।

कुमारी की विरक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। करुणा ने अन्यमनस्क भाव से मुस्करा दिया।

अब रामशरण कुमारी की तरफ आकृष्ट हुआ। यों तो रह-रहकर वह बराबर कनखियों से उसकी ओर ताकता जाता था, पर बोला अभी—'कहिए, आपकी 'फिलॉसॉफी' क्या है?'

'मेरी?' कुमारी ने कुछ चिढ़कर कहा—'कुछ नहीं, मैंने तो

'ना' कुमारी ने हँसकर कहा —करुणा बड़ी वैसी है।

'वाह! 'करुणा ने दोनो हाथों और मुख की चेष्टा में 'वाह' का भाव खूब अच्छी तरह भरकर कहा—'मुझे ऐसी-वैसी क्यों' बताती हो! मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया? वाह! खासी रही

'नाउ, लेट दी मैटर गो टु हेल!' रामशरण ने कहा— 'खत्म कीजिए, सुनिए, एक बात है। कॉलेज खुलते ही मैं तो एम० ए० में दाखिल हो रहा हूँ। कहिए, आपकी क्या इच्छा है?

लक्ष्य सरीहन करुणा की तरफ़ था, तो भी वह कुछ न बोलकर कुमारी की तरफ़ देखने लगी।

और कुमारी ने ठीक अभिप्राय समझकर उसकी रक्षा कर ली— 'यह तो कहती थीं, आगे नहीं पढ़ेगी। क्यों करुणा?

विपत्ति फिर करुणा पर आई। न वह बोलना चाहती है' न बात आगे बढ़ने देना चाहती है।

दोनो सखियों की आँखें चार हुईं।

सहसा ठाकुर साहब चिल्ला उठे — 'ऐ लो, प्रोफ़ेसर साहब भी आ पहूँचे। हल्लो, मिस्टर नकुलचन्द्र .... !

(६)

दर्मियाने कद का एक भोला-भाला पुरुष द्वार पर खड़ा था। पैरों में धूल-भरी चप्पल, मोटी, देहाती गाढ़े की धोती, वैसी ही कमीज, गले में काले रंग का डोरा, जिसमें बंधी घड़ी कमीज की जेब तक जाती हुई—और सिर नंगा सिर के बाल छोटे-छोटे, सख्त और सीधे कटे हुए, मस्तक चौड़ा मूछें पतली नाक लम्बी और आगे को कुछ मुड़ी हुई, आँखें उज्वल और पास-पास ओंठ परस्पर अच्छी तरह मिले हुए और हजामत बढ़ी हुई थीं। मस्तक पर एक अलौकिक तेज था, और हाथ-पैर खूब लम्बे-लम्बे और

हृष्ट-पुष्ट थे।

यही प्रोफेसर नकुलचन्द्र एम्० ए० बी० टी० हैं।

वहीं खड़े-खड़े उन्होंने कमरे में झाँका, और हाथ जोड़कर सबको एक ही बार नमस्कार किया। तब अत्यन्त कोमल स्वर में कहा—'बाबुजी अभी नहीं आए हैं ?

रामशरण ने कहा '—अभी नहीं आए हैं, शायद अम्माजी को औषधि दे रहे हों।

'एक मिनट—एक मिनट के लिए क्षमा—' कहकर प्रोफेसर साहब वापस लौट गए।

कोई दस मिनट में वापस लौटे। अकेले ही थे। आकर एक खाली कुर्सी पर बैठ गए। रामशरण ने पूछा—कहिए बाबूजी मिले ?

'जी हाँ, मिले'

'आए नहीं ?'

'न, अम्माजी को दौरा हो गया है। वह अचेत हैं। बाबूजी उन्हीं की देख-भाल में व्यस्त हैं।

अच्छा आइए, मैं आपका परिचय कुमारी कुमारीदेवीजी से कराऊँ' रामशरण ने उठकर दोनों का परिचय करा दिया।

'ओह! मैंने देखते ही आपको पहचान लिया था!' प्रोफेसर साहब ने कहा—'बात यह है कि .. कि मैं आपके घर होकर आया हूँ।'

कुमारी उनके दर्शनों का प्रदर्शन कैसे करे? मेरे घर गए हैं!—हाय! मैं न जानी........!

[illegible]

कुछ अस्वस्थ-सी मालूम होती थी। मैंने अभिप्राय उन्हें बताया, तो कहने लगीं—आप निमंत्रण में यहाँ आई हैं! ....देखिए, संयोग....!

रामशरण ने कुमारी को लक्ष्य कर कहा —'देखिए, मैंने कहा न था—! आपका लेख....इतना....इतना भद्दा और वाहियात था कि प्रोफ़ेसर साहब आपसे भेंट करने को पागल हो उठे!'

कहकर उसने करुणा की तरफ़ देखकर हँस दिया।

अब करुणा ने कहा —'और कुमारी भी तो आपसे भेंट करने को व्याकुल थीं!— सच पूछिए, तो मेरा निमंत्रण भी उन्होंने इसी लालच से स्वीकार किया है!'

कुमारी की ओर कोई इस समय न देखे। कहते भी हैं—न देखिए, कहीं ऐसा न हो, वह लाज से मर जाय, गड़ जाय, वाष्प बनकर उड़ जाय!—अधीर न हूजिए, मैं अपने सूक्ष्म नेत्रों द्वारा उसकी भाव-भंगी का चित्रण करता हूँ। नथुने जल्दी-जल्दी फरक रहे हैं, चेहरा बारी-बारी लाल, पीला सफ़ेद रंग बदल रहा है। सिर नीचा हो गया है। आखें झिपी पड़ती है।

हाय!—यह करुणा मर जाय!—इसने सारा भंडा फोड़ दिया!—बी० ए० पास करके भी इसे सभ्य-समाज के नियमों से परिचय नहीं हुआ?—क्या इसी के लिये इसने मुझे अपने घर बुलाया है? —हाय!—कैसे यह बात वापस हो?—कैसे यह लाज ....

और करुणा?

— उसकी मानसिक अवस्था का वर्णन कैसे करूं? जैसे उसने दाँत पीसकर अपने शत्रु पर भरपूर वार कर दिया! जैसे जरा से अपराध का अत्यंत क्रूर और प्रचंड बदला उसने ले लिया!

जैसे उसने अपने हृदय की प्रज्वलित अग्नि का पूर्ण प्रतिकार कर डाला !

पर इस प्रतिकार की, इस क्रोध की, इस वार की आवश्यकता उसे क्यों पड़ी ?–क्या इस पर भी आप गौर करेंगे ?

यह कुमारी सहसा क्यों उसके बीच में आ पड़ी ?–इसपर सहसा सब लोग क्यों उतने स्नेहार्द्र हो जाते हैं ? मेरे घर आकर इस हर किसी को अपनी ओर आकृष्ट कर लेने का क्या अधिकार है ? और, मैंने ही अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मार कर क्यों इसके सामने अपने आपको हत-प्रभ कर डाला है

नकुल बोले–'आपका लेख पढ़कर मुग्ध हो गया ! आप में इसी अवस्था में ऐसी आध्यात्मिक प्रतिभा है, यह सचमुच आश्चर्य और गर्व का विषय है।'

कुमारी को बोलना चाहिए। इस तरह लजाकर चुप रहना था, तो आई ही क्यों, और लजाने की बात ही क्या है ?

चेहरे पर लाल रंग आ कहने लगी–'मैं आपको धन्यवाद....

रही है! इस छोकरी करुणा और इस पागल रामशरण के गधेपन पर क्यो वह शर्म से गड़े? और; क्यों न थोड़ी वेहया बनकर उन्हें ला-जवाब कर दे? क्यों न उनकी उपेक्षा करके उन्ह ही लजा दे?

आँखें उसने प्रोफेसर साहब के गोल और तेज पूर्ण मुख पर जमाई, और अस्फुट स्वर में कहा—'मैं भी बहुधा आपके.... लेखों का........लेखों को पढ़ती रहती हूँ।

कहना वह यह चाहती थी—'आपके पांडित्य-पूर्ण लेखों का रसास्वादन करने का सौभाग्य प्राप्त करती हूँ।' पर चाहे जितनी दृढ़ हो चुकी थी, यह बात सहसा उसके मुँह से न निकल सका।

नकुचन्द्र बोले—'जी हाँ, में भी उसी पत्रिका में लिखा करता हूँ—मेरा और आपका विषय लगभग एक-सा ही है, पर वर्षों से अध्ययन और अन्वेषण में लगे रहकर मैंने जो कुछ समझा है मेरे ख़याल में, आपने उससे अधिक और ठीक समझा है। गीता की महत्ता को,जान पड़ता है, आपने खूब अच्छी तरह और खूब स्पष्ट देख लिया है। और, आगे चलकर न-मालूम........'

कुमारी सोच रही थी, कहदे—'कई अंशों में आप ही मेरे गुरु हैं, आपके लेखों ने मेरे लिए पथ-प्रदर्शक का काम किया है'—इत्यादि।

पर इस करुणा का बुरा हो! बीच ही में गम्भीर भाव से बोल पड़ती है—आगे चलकर जो होगा, मै जानती हूँ। आगे चलकर ब्याह होगा,और सारा अध्यात्म-रस बच्चे-कच्चों के पाखाने की बदबू सूँघकर वह निकलेगा।'

भोजन आ गया था, फल और नमकीन की तश्तरियाँ रक्खी

जा चुकी थीं। एक नौकर, एक दासी परस रहे थे, उन्होंने भी और उस कमरे में उपस्थित तीन आमंत्रित व्यक्तियों ने भी करुणा के इस गंदे, अशिष्ट और अनुपयुक्त उपहास को सुना....।

कुमारी की बात पीछे कहेंगे, नकुलचंद्र के सतेज मुख पर भी लाज और संकोच की सलवटें पड़ गईं। आँखें निष्प्रभ हो गईं, और गरदन कुछ नीचे झुक गई। भयानक खेद और परिताप उनकी प्रत्येक भाव-भंगी से प्रकट होने लगा।

यहाँ तक कि रामशरण भी लज्जित हास्य-पूर्ण नेत्रों से एक बार ताककर चुप हो गया।

अब कुमारी की सुनिए —

एक बार उसकी इच्छा हुई, जोर से एक तमाचा करुणा के मुँह पर मारे, पर क्षण-भर बाद ही इच्छा में परिवर्तन हुआ, और उसने फौरन कुर्सी छोड़कर उठ जाने और उसी दम घर चले जाने का विचार किया।

पर दूरदर्शित बुद्धिमत्ता और परिस्थिति उसके लाल चेहरे को और अधिक लाल कर देने के अतिरिक्त उपर्युक्त और कोई आज्ञा उसे न दे सकी, और कुमारी पत्थर की मूर्ति की तरह निश्चल, निर्वाक जमी बैठी रही।

आँखें उसकी छलछला आईं।

इस पल भर की निस्तब्धता के कारण करुणा का मन धिक्कार और पश्चाताप की ज्वाला से दग्ध हो उठा, और अनुताप, खेद, वेदना के रंग से उसका सारा शरीर रँग उठा।

यह क्या-से-क्या हो गया ? मेरे ईश्वर! यह करुणा का उपहास दुगुनी, चौगुनी, सौगुनी, हजारगुनी ज्वाला और वेग सहित किस प्रकार उल्टा उसी पर आ पड़ा? इस चार आदमियों

के संक्षिप्त समाज में सबको दुःखी करके, सबको असंतुष्ट बनाकर, सबकी अप्रिय पात्री बनकर कैसे वह असहाया अपनी मान रक्षा कर सकेगी और ऐसा भयानक अपमान से ऐसी तीव्र यंत्रणा, ऐसी कड़वी लाँछना ऐसा वीभत्स त्रास और ऐसा विलक्षण विद्रूप सहकर कितने क्षण उसका कलेजा फटे बिना रह सकेगा ?

सहसा रामशरण ने नश्तर लगाकर फोड़ा खोल देने की महती अनुकंपा दिखाई, या कहें, करुणा का महान् उपकार किया बोला—'आपकी यह बात तो कुछ ठीक नहीं जँची।'

बस !-फिर क्या था, सम्हल गई। करुणा झट बोल उठी 'क्यों, जँची क्यों नहीं ?—आप ही बताइए, विवाह के बाद अभागिनी हिन्दू-बाला को पढ़ने-लिखने या किसी गंभीर विषय का विवेचन करना कहाँ सूझता है, और कहाँ इतना अवकाश मिलता है ?'

ओफ़् ! कितनी बड़ी बात थी, और कैसी आसानी से सम्हल गई ! नकुलचंद्र का संदिग्ध, स्तंभित हृदय तो एकबारगी, पहले की तरह, निर्मल और स्वच्छ हो गया। कहने लगे—'कुछ हद तक यह बात सच हो सकती है। माना, विवाह के बाद किसी गंभीर विषय के अध्ययन और अन्वेषण के लिये समुचित समय नहीं मिल सकता, पर इस बात से कैसे इनकार किया जाय कि उद्योगी व्यक्ति भयानक-से-भयानक कठिनता में भी समय निकला सकता है, शिक्षित परिवार और सु-संस्कृत पति-पत्नी तो सहज ही में एक दूसरे को समझाकर, परस्पर उदार हो सकते हैं ?........'

'जैसे कि अवश्य आपके 'केस' में होगा !'—रामशरण ने मध्ये हास्य का पेवंद लगाया।

करुणा एक नई बात बताने का लोभ न त्याग सकी। इससे

कितनी उसकी चपलता थी, कितनी दुर्बलता और कितनी ईर्ष्या यह मैं नहीं कह सकता। कहने लगी—'अभी तो कुछ निश्चय ही नहीं हुआ है!'

हम इस बात को शुरू से नोट करते आ रहे हैं कि करुणा के प्रति नकुलचंद्र के भाव में सूक्ष्म-सी विरक्ति और उपेक्षा विद्यमान है, और करुणा की बातों पर वह अधिक ध्यान देना नहीं चाहते हैं न उसकी बात का जवाब देना ही उन्हें अभीष्ट है, बल्कि उससे नजर चुराने की भी जरा-जरा चेष्टा वह करते हैं, पर उसकी यह बात सुनकर उनके भाव में सहसा एक अद्भुत परिवर्तन हुआ, और उनके मुँह से निकल पड़ा—'सच?' और साथ ही करुणा के मुँह का भाव बदल गया।

(१०)

आखिर सब चीजें परसी जा चुकीं, तो रामशरण ने इधर-उधर देखा, और कहा—'तो आरंभ किया जाय?'

करुणा बोली—'अवश्य।' नकुलचंद्र ने कुछ अस्थिर स्वर में कहा—'बाबूजी....... वह शायद........

'हाँ, 'बाबूजी' को आने दिया जाय—!' आखिर कुमारी ने भी कह ही डाला

वह न आवेंगे।'—करुणा ने विरक्त होकर कहा—डॉक्टर पर, नर्सपर, दाई पर, किसी पर उन्हें विश्वास नहीं है। औषधि पिला रहे होंगे—वह न आवेंगे।'

नकुलचंद्र कुछ न बोले, केवल अस्थिर दृष्टि से इधर-उधर ताकने लगे।

करुणा का भाव भी उनके प्रति कुछ उपेक्षित है—यह भी इनसे छुपाते न बनेगा। कम-से-कम वैसा संकोच-पूर्ण भी नहीं

है, जैसा इस स्थिति में होता, न उसके मुख पर वैसा स्निग्ध हास्य ही दिखाई देता। एक शुष्क लापर्वाही और ऐक कड़वी चिढ़न निरंतर उसके व्यहार में दीख पड़ती है, जैसी व्याह होने के दो-तीन वर्ष बाद कभी-कभी दंपति में देखी जाती है अथवा पति के व्यक्तित्व में श्रेष्ठत्व का अभाव पाने पर जैसा समय-समय पर पत्नी के आचरण में पाया जाता है।

बाबूजी को बुलाने के लिये नकुलचंद्र नौकर से कहना चाहते थे, बल्कि भोजन परसे जाने के बाद उठकर कहीं जाना असभ्यता न होती, तो वह स्वयं ही पुनः उनके पास जाते पर, करुणा की उपेक्षा को वह विद्वान पुरुष किसी-न-किसी हद तक तो समझता है। ऐसी स्थिति में आप ही कहिए, उनके घर में बैठ कर उसकी इच्छा के प्रतिकूल कैसे उसी के नौकर को वह आज्ञा देने का साहस करें?

पर इस गोरख-धंधे की-सी परिस्थिति को जरा न समझ-कर भी रामशरण ने प्रोफेसर साहब के मन की बात कह दी बोला—'तो आप जरा नौकर को भेजकर एक बार उनसे पुछवा क्यों नहीं मँगाती हैं?'

नौकर गया, और पाँच मिनट बाद ही लौटकर बोला—'साहब, दवा तैयारकर रहे हैं।'

करुणा ने चीखकर कहा—'अरे गधे! यह तो हमें भी मालूम था, यह बता, वह आरहे हैं या नहीं?'

नौकर-चाकर छोटी मालकिन से थर-थर काँपते हैं। नोकर ने चिहुँक-कर कहा—'ना....वह नहीं आ रहे....कहा है—नहीं आ सकते।'

करुणा ने आप-ही-आप बड़बड़ाकर कहा—पहले ही कहती

थी! बाबूजी इतने बड़े हुए, मगर विवेक नहीं। जग जानता है–मा के दिन पूरे हो चुके हैं, धन्वंतरि भी उन्हें बचा नहीं सकते, चौबीस घंटे में अड़तालीस प्रकार की दवाइएँ देकर उसे तंग कर रहे हैं, और आप व्यर्थ हास्यास्पद बन रहे हैं।'

रामशरण ने कहा—'बात यह है,....आपने वह मसल सुनी है कि जब तक श्वास 'तब तक आस'! यह तो स्वाभाविक ही है।'

यह न समझिए, रामशरण ने कुमारी के विरुद्ध बोलने का साहस किया? यह तो उसने सहानुभूति दर्शाई है, बल्कि कहूँ चापलूसी की है!

कुछ बीच में आपसे कहदूँ—जिससे स्थिति आप की समझ में आ जाय, और कहानी पढ़ने में आपको मजा मिले।

यह रामशरण सेकंड इयर तक नकुलचंद्र के साथ पढ़ा था। फ़ेल होने के कारण पिछड़ गया। इसके पिता—वह पूर्वोक्त देहाती जमींदार—करुणा के पिता के पुराने मित्र हैं। करुणा के पिता की देख-रेख में ही वह शिक्षा पा रहा है। करुणा के साथ उसका पुराना परिचय है। हम यह कह दें कि अगर प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र बीच में न आ पड़ते, तो करुणा अब तक शायद उसकी पत्नी बन गई होती।

पर इस प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र ने तो सहसा उसकी जगह हथिया ली! पहले पहल, दो साल हुए, नकुलचंद्र रामशरण के साथ यहाँ आए थे, और उसी के द्वारा उनका परिचय करुणा के पिता से हुआ था।

रामकिशोर (करुणा के पिता) जहाँदीदा आदमी हैं। नकुल को देखा, बात की, तो रीझ गए। उधर रामशरण फ़ेल-पर-फ़ेल इधर नकुल दौड़ादौड़ बढ़ जाते थे। यहाँ तक कि एम्० ए० बी०

टी० जल्दी-जल्दी पास कर फौरन् उसी कालेज में प्रोफेसर हो गए।

पर कन्या का झुकाव उन्हें डाँवाडोल-सा दीखा। नकुल से हँसती है, बोलती है, मिलती है, पर चिढ़ती भी है। वह स्निग्ध प्रेम और खिचाव, जो देखते ही प्रेमी-प्रेमिकाओं में पैदा हो जाता है, करुणा में उन्हें नदेख पड़ा।

और फिर शायद वह इसके बिना भी करुणा को नकुल से व्याह देते, पर एक बड़ी बाधा थी। नकुल के पिता भयानक पुराने रोगी, कुसंस्कृत और अशिक्षित व्यक्ति थे। करुणा उस गंदे घर में उस अक्खड़, क्रोधी, रोगी, घृणित बुड्ढे के साथ एकदिन भी कैसे रह सकेगी! एक दिन बातों-बातों में उन्हों-ने नकुल का मंतव्य जानना चाहा। नौकरी लगजाने, और विवाह हो जाने पर क्या वह पिता से अलग हो जायँगे! इस पर नकुल के नेत्र लाल हो गए, और वह यह कहकर उसी वक्त चले गए थे—ऐसी कल्पना आपके मन में आई, यह अफ़सोस की बात है!

समझदार, बूढ़े रामकिशोर ने इस तिरस्कार को शर्बत की घूट समझा, नकुल ने उनके हृदय में अधिक जगह बना ली। नकुल इस घटना के बाद कुछ दिन उनके घर न आए, तो वह एक दिन स्वयं उनके घर पहूँचकर उन्हें बुला लाए।

तब उन्हों ने सोचा, नकुल के पिता पुराने रोगी हैं, कुछ दिन में समाप्त हो जायँगे। तब तक नकुल नौकर हो जायंगे। न भी होंगे, तो.......उनका धन.......।

अब उनके सामने केवल यही काम रह गया कि कन्या नकुल के गुण समझे, और उनके प्रति उसे अनुराग हो।

पर चपल कन्या इतनी गहराई में न जा पाती थी। उसे अध्यात्मवाद से कोई गरज नहीं, उसे समाधि और योग की क्रियाओं में कोई अनुराग नहीं, गहरे पानी में पैठकर रत्न खोजने का कष्ट उठाना वह नहीं चाहती। अंगरेजी पोशाक लंबे घुंघराले बाल, हर समय हँसता हुआ चेहरा--उसके विचार और प्यार करने की तो बस,यही चीजें हो सकती हैं। उदासीन चेहरा गूढ़ धारमिक वार्तालाप, मोटा गँवारों का-सा लिवास और अशिक्षितों का सा मुँह—भला कैसे वह अनुराग-पूर्वक इन सब पर विचार करने को समय दे ? नकुल से वह हँस सकती है, बोल सकती है, उस पर श्रद्धा कर सकती है उसका आदर कर सकती है पर प्यार—भला प्यार कैसे करे ? दिल्लगी कैसे करे ?

पिता ने उसे काफी आजादी दी है और कहें—वेश्या बना दिया है। ब्याह के विषय में पिता कई बार स्पष्ट प्रश्न कर चुके हैं और सच जानिए, अगर नकुल न होते तो वह रामशरण का नाम पिता के आगे पेश कर चुकी होती !

जी हाँ नकुल न होते तो। यह नहीं कि नकुल की तरफ उसका दिल दौड़ता था बल्कि कारण कुछ और ही थे।

करुणा पिता का आदर करती है, पिता का सच्चा स्नेह रखती है और उनका दिल भी तोड़ना नहीं चाहती। वह स्याही से मा की दवा की तुलना करने की बात जो पिछले किसी पृष्ठ पर लिखी जा चुकी है, वह तो आपने देख ही ली—कोरा बहाना था और कमरे में बैठे हुए आमंत्रित व्यक्तियों के सामने जो उसने पिता के प्रति विरोध प्रकट की, वह भी केवल उनका हृदय उद्वेलित होने के कारण। हाँ तो, पिता की इच्छा समझ कर एक मुद्दत से वह नकुल को प्यार करने की चेष्टा करती आती है। हाँ, पिता की इच्छा ! समझेगी क्यों नहीं बच्चा तो नहीं है !

नकुल के प्रेम का अंकुर जमा या नहीं ? यह बात अभी रहने दें। पहले रामशरण का नाम पेश न करने का अन्य कारण आपको बता दें। वह था रामशरण का स्वभाव—कुछ चापलूस और कुछ ईर्ष्यालु। नकुल की बात उठते ही वह दबा देना चाहता है, नकुल की प्रशंसा सुनते ही वह भी हत हो जाता है, नकुल का मजाक उड़ाने में वह सदा आगे रहता है, और बात-बात पर करुणा की प्रशंसा,ख़ुशामद, चापलूसी करते हुए थकता नहीं है।

अपनी प्रशंसा सुनकर कौन प्रसन्न नहीं होता ? पर सब बातों की हद होती है न ? अगर उस प्रशंसा में कृत्रिमता का जरा-सा भी आभास मिल जाय तो मन कैसा विपराण हो उठता है ? इसका अनुभव तो आपको भी होगा ही ?

बस, यह गुत्थी उलझती ही आ रही है, और आप को सुनकर आश्चर्य होगा कि रामशरण की इस आदत ने चंचल करुणा का जिद्दी मन उससे विमुख कर दिया है।

और इधर यह संघर्षण, उधर पिता की चेष्टा। करुणा अनेक बार मन-ही-मन यह निश्चय कर चुकी है। 'नकुल से ब्याह करूँगी।'.

पर उसके विचार बहुत क्षण-स्थायी होते हैं, पारे की गोली की तरह कभी इधर कभी उधर—और जब कभी ऐसा परिवर्तन होता है, तो जो भयानक तूफ़ान उसके मन में उठता है, उसे केवल वही आपकोबत्ता सकती है।

उधर रामकिशोर बेटी का यह बदलता हुआ भाव देख -देख कर मन-ही-मन प्रसन्न होते हैं। नकुल को जामाता बनाने की कल्पना करके उनके शरीर में ख़ुशी से रोमांच हो उठता है। जिन कारणों से बेटीका मन नकुल पर कम जमता है, उन्हें भी वह समझ गए और एक बार बहुत-स अगरेजी

कपड़े बनाकर उन्होंने उपहार में नकुल को देने भी चाहे, पर उसने अस्वीकार किया, बल्कि ऐसा करते हुए वह भोला-भाला निर्मल हृदय युवक कुछ दुःखित भी हुआ।

इधर रामशरण को सुनिए। रामकिशोर का भाव वह कुछ कुछ समझता है, और मन में इस बात का निश्चय होने पर भी कि नकुल को वह हरा देगा, वह उस पुराने मित्र से द्वेष रखता है।

क्यों, उसे अपनी जीत निश्चय है? जाने कब, किस मौक़े पर, करुणा ने एक बार उसे ब्याह करने का वचन दे दिया था करुणा चाहे उस वचन को भूल गई हो, पर वह नहीं भूला है। और भूले भी क्यों? प्रकटतः करुणा के व्यवहार में कोई विशेष अंतर नहीं पड़ा, और अपनी आँखों से तो उसने नकुल और करुणा को आज तक परस्पर अन्य-मनस्क ही पाया है, तब भला वह कैसे करुणा के सुंदर कौशल की कल्पना करे? और कैसे उसके प्रणयी होने के दावे में अंतर डाले?

सारी स्थिति का वर्णन हमने किया। कुछ जटिलता तो इसमें ज़रूर आपको मिलेगी, मगर एक बार फिर पढ़िए बात सच है, और ज्यों-की-त्यों है, इसलिए अवश्य आपकी समझ में आ जाएगी।

बस अब यह परिच्छेद समाप्त होता है। भोजन के समय का वार्तालाप और करुणा के मानसिक भावों का गिराव-उतार आपको बताकर आपकी नज़र में उनका चरित्र गिराने को जी नहीं चाहता। कमज़ोरियों से खाली तो विरले ही होते हैं—हम उन कमज़ोरियों का अनावश्यक प्रदर्शन कर कर को नंगा क्यों बनावें, कमज़ोरियों के पर्दे में गुणों को ढाँककर मनुष्यता क्यों छिपावें, और अपने भी न्यायिकता

के अधिकार का दुरुपयोग क्यों करें ?

हम तो आपका ध्यान अंत में इसी बात पर आकृष्ट करेंगे कि चलती वार करुणा कुमारी के साथ गाड़ी में बैठकर उसके घर तक गई, और उस की मां को देखकर प्यार से सखी के गले लगकर वापस लौटी !

एक बदबूदार गंदी और सकरी गली है। दिन का प्रकाश बहुत बे-हया बनकर जाने पाता है। आमने सामने के मकानों के छज्जे कहीं-कहीं तो इतने पास-पास हो गए हैं, जैसे दो मरखने साँड हों, जो क्रोध में आकर टक्कर लेने को तैयार हों हो क्यों नहीं ?—म्युनिसिपैलटी की लालटैनें भी हैं ही, मगर सात रुपए मासिक से जलाने-वाले का पेट कैसे भरे ? वह महाशय रुपए में चवन्नी का तेल उसमें भरकर घंटे-भर की व्यवस्था कर जाते हैं। और ठीक ही करते हैं; रात मे घंटे-दो घंटे ही तो लोग चलते-फिरते हैं, फिर कौन रात-भर गली में झाँकने आता है ?

इसी गली के एक छोटे मकान में पिता-सहित प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र रहते हैं।

उस मकान की कैफ़ियत सुनिए। नीचे की मंज़िल में रसोईघर के ऐन सामने ही पाखाना है। दहलीज़ ऐसी है, जिसमें दो के अतिरिक्त मुश्किल से तीसरा आदमी जगह पा सके। फ़र्श के पत्थर जगह-जगह टूटे हुए और चौक में अनेकों छोटे-बड़े गड्ढे पड़े दालान और कोठे के अँधेरे की तो पूछिए ही मत। दिन के अँधेरे से तो रात की तुलना आप को समझाई जा सकती है, मगर रात की तुलना किससे की जाय ? बस, ऐसा बिभत्स अँधकार होता है कि नरक की कल्पना आप करें !

नकुल के पिता शंकरलाल का थोड़ा परिचय आप पहले पा चुके हैं, यहाँ विस्तृत रूप से पाएँगे।

घोर निर्धन हैं। संपत्ति, जायजाद, जो कुछ कहें, एक यह मकान बच गया है। वह भी दो-तीन हज़ार की मालियत! विष्ठा के किड़े को जैसे विष्ठा में रहना सुखकर लगता है, शायद ठीक उसी तरह शंकरलाल भी इस स्थान को स्वर्ग समझे यहाँ पड़े हैं।

जब से प्रोफेसर हुए नकुल ने कई बार दूसरे मकान में चलकर रहने का विचार किया, पर अफ़ीमी, अशिक्षित बुड्ढे ने दाँत पीसकर इसका विरोध किया।

दमे का पुराना रोग शंकरलाल को है, और अफ़ीम खाने का व्यसन भी। नकुल जब आठवीं क्लास में पढ़ते थे, तभी माता का देहांत हो गया। ऐसे कुसंस्कृत, दुराचारी और अशिक्षित पिता का पुत्र कैसे उच्च शिक्षा प्राप्त कर सका? इसकी संक्षिप्त कहानी आपको सुनाए देते हैं—

माँ उनकी देहात की बेटी थी, और खूब पढ़ी-लिखी थी शायद देहात की होने के अपराध में ही ऐसे अशिक्षित नागरिक के पल्ले पड़ी अस्तु। आरम्भ से ही उसने बेटे को अपनी देख-रेख में रक्खा। पति के विरोध की परवा न करके उसे स्कूल में दाखिल भी करा दिया, और जीते दम तक किसी-न-किसी प्रकार पढ़ाती भी रही। जब मरी तो चौदह वर्ष के बेटे पर [illegible] घोर विश्वास किया कि एक हज़ार रुपया चुपचाप उसे सौंप गई, और दो आज्ञाएँ दे गई—'सदा पिता की सेवा करना और इस रुपए को जान से रखकर जितना पढ़ सको, पढ़ना।'

बालक नकुल ने माँ के दोनों उपदेश गाँठ में बाँध लिए,

और आज तक अक्षरशः माता की आज्ञा का पालन किया।

देखने वाले कहते हैं—जैसी मा थी, बेटा बिल्कुल वैसा-ही है

मा कैसी थी, यह बताना व्यर्थ है, बेटा कैसा है इसे देखकर ही आप अनुमान कर लीजिए।

शंकरलाल शुरू से उसके अंगरेज़ी पढ़ने के खिलाफ़ थे। अंगरेजी पढ़ा-लिखा पुत्र न-जाने कब उन्हें जहर खिलाकर मार डाले, न-जाने कब किस्तान हो जाय, न-जाने कब क्या कर बैठे।

पर पिता के सारे विरोध, सारी कठोरता, सारी कड़वी और असह्य ताड़ना-लांछना को सिर पर लादकर भी नकुल आगे पढ़ता रहा, और आज इस दशा में है

शंकरलाल-जैसे व्यक्ति संसार में विरले ही होते हैं। ऐसा भयानक कि पिता कहते लज्जा लगे। जब पत्नी मरी, तो बेटे से कहा—'अंगरेज़ी का लोभ छोड़ो, और मुनीमी सीखो, जिससे जल्दी दो पैसे पैदा कर सको।'

नक़ुल ने सिर झुकाकर पिता की बात सुन ली, और स्कूल जाना बंद न किया।

महीनों खूब जंग छिड़ी। शंकरलाल स्कूल में जाकर बेटे का नाम कटवा आए। जब नकुल ने सारा माजरा हेडमास्टर से कहा, तो उन्होंने फिर उसे दाखिल कर लिया, तब शंकरलाल रोज़ सुबह-शाम क़साई की तरह मारने लगे। कुछ तो सदा का स्वभाव क्रूर और कुछ पत्नी की मृत्यु। सच कहें तो वह नर-पशु बन गए थे।

नकुल ने सब कुछ सहा, पर स्कूल जाना न छोड़ा।

तब कसाई शंकरलाल एक दिन चिमटों, लकड़ियों 'घूँसे,

और लातों से मार-मार कर 'बेटे को' अधमरा कर दिया; और दो दिन तक भूखा-प्यासा एक कोठरी में बंद रक्खा।

पड़ोसियों ने आकर बेटे को बाहर निकलवाया। पर अब की बार नकुल घर से ही गायब हो गया। हेडमास्टर ने सारा क़िस्सा सुना, तो स्कूल के बोर्डिंग हाउस में दाखिल कर लिया।

चाहे क़साई हो या नर-पशु, है तो पिता। शंकरलाल आखिर पिघल पड़े, और बोर्डिंग-हाउस पहुंचकर रोते-रोते उन्होंने बेटे को छाती से लगा लिया। यह झूठ नहीं बिलकुल सच है।

कुछ दिन तक शंकरलाल शांत रहे। नकुल बराबर पढ़ने जाता रहा, पर स्वभाव कैसे छूट सकता है? थोड़े ही दिन बाद उनका अत्याचार फिर बढ़ने लगा।

और सब तरह नकुल तंग किया जाता, मगर पढ़ने में अब वैसी अड़चन न रही। बस, सहनशील नकुल के लिए इतना ही काफ़ी था।

शंकरलाल की प्रकृति ऐसी क्यों थी? और एक भयानक क्रूर का पुत्र कैसे इतना विद्वान, सदाचारी और सहनशील हो सका? इन प्रश्नों के उत्तर में कोई वैज्ञानिक सत्य आपको नहीं बता सकते हम तो माता के प्रारंभिक उच्च संस्कार और पूर्व जन्म के शुभ कर्मों को ही इसका कारण मानते हैं। शंकरलाल की प्रकृति बहुत वीभत्स थी। बच्चे नकुल पर उनका अत्याचार तो खैर कुछ संगत भी था, मगर अब— [illegible] एम० ए० पास कर लेने; और प्रोफेसरी कर लेने, और वसन और भोजन के लिए पैसा देने पर भी बेटे पर उनकी अभी भी नादिरशाही ज्यादतियाँ होती हैं। कुछ ऐसा भाव उनके

मन में जम गया है कि बेटे पर यह अत्याचार यह ज्यादती करने का उन्हें जन्म सिद्ध अधिकार है। अब इसे एक भयानक उन्माद के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है? नकुलचंद्र अब तक चुपचाप यह अत्याचार, अपमान और लाँछना सहते और पिता पर श्रद्धा रखते है। नकुल के इस भाव की लोग हँसी उड़ाते हैं, पर हम न उड़ाएँगे—इसलिये नहीं कि हम आदर्शवाद का पृष्ठ-पोषण करना चाहते हैं, बल्कि इसलिये कि नकुल के संबंध में कोई निर्णय करने या मंतव्य देने में अपने को भी अयोग्य पाते हैं और किसी कार्य का औचित्य, अनौचित्य स्थिर करने में अपने से अधिक उन्हें योग्य देखते हैं। और एक बात यह है कि हम अगर सर्वज्ञ बना भी दिए गए, तो भी यह तो आप मानेंगे ही कि भुक्ति-भोगी अपनी स्थिति को हमसे अधिक समझता होगा।

घर के फ़र्श में गहरे-गहरे गड्ढे पड़े हैं—आज सारा फ़र्श उखड़वाकर नए सिरे से बनवाने के लिये नकुल कुछ राज-मज़दूरों को लेकर आए।

शंकरलाल खाँसते-खाँसते दाँत पीसकर बोले—"आज यह किन यमदूतों को साथ लाया है?"

नकुल ने नेत्र झुकाकर उत्तर दिया—'मिस्तरी-मजदूर लोग हैं........!"

शंकरलाल ने उसी विकृत स्वर में कहा—,क्यों लाया है? क्या मेरी क़ब्र खुदवानी है?'

नकुल बोले—"फ़र्श में जा-बजा गड्ढे पड़ गए हैं। मैं इसे तुड़वाकर नए सिरे से बनवाना चाहता हूँ।"

शंकरलाल भयानक रूप से चीत्कारकर उठे—"रे कुलांगार! क्या यही करने लिये तूने अंगरेजी पढ़ी है !!"

नकुल ने धीरज धरकर शांत स्वर में कहा—'देखिए न, इसमें हानि क्या है? फर्श पुराना और खराब हो गया है, इसे तुड़वाकर......।'

'हाय! तुड़वाकर!"—कहकर शंकरलाल ने जोर से एक मुक्का अपनी छाती में मारा, और दीवार से सिर टकराते हुए कहा—'हाय! इसी लिये तूने अंगरेजी पढ़ी थी?'

'लेकिन बताइए तो' राज-मिस्त्रियों को विदा कर नकुल पिता से बोला—'इसमें बुराई क्या थी?'

शंकरलाल ने रौद्र भाव से पुत्र को घूरते हुए कहा—'अरे! तू मेरे सामने, मेरे जीते-जी पूर्वजों के स्थान को नष्ट-भ्रष्ट करके, अंगरेजी फैशन उसमें घुसेड़ना चाहता है! और फिर पूछता है क्या हर्ज हुआ? जा तू घर के बाहर क्रिस्तान बनकर फिर, मेरी आँखों आगे यहाँ पर कुछ नहीं कर पावेगा.......।"

को मुझ से छीनना चाहता है ?........आज खून होगा—एकाध खून होगा !'

कहते-कहते, क्रोध से जलता हुआ वृद्ध अपनी लाठी की खोज में इधर-उधर ताकने लगा।

जब लाठी न मिली, और खड़े में वृद्ध अशक्त हुआ, तो वहीं बैठे-बैठे उसने जोर-शोर से चीखना शुरू कर दिया—"अरे नीच, पापी रामकिशोर, ईश्वर करे, तेरा नाश हो जाय! तू ज़रा मेरे सामने तो आ ! हे पिष्ठ ! तू अपनी उस व्यभिचारिणी छोकरी को मेरे बेटे के गले बांधकर क्यों उसे धर्म-भ्रष्ट करना चाहता है !" इत्यादि।

नकुल एक बार काँप उठे। क्षोभ और यंत्रणा के कारण उन्होंने आँखें बन्द कर लीं, और तब पिता पर दृष्टिपात किए बिना बाहर चले।

शंकरलाल ने चीखकर कहा—"चला ! चला ! अरे मेरा लाल चला ! अरे कोई इसे बचाओ ! अरे कोई इस पाजी रामकिशोर का गला घोंट दे। अरे वह मेरे लाल को ज़बरदस्ती छीनना चाहता है। अरे ईश्वर ! ज़रा मेरी तरफ़ देख ! ओ नकुल !........ओ कुलांगार ! ओ पापिष्ठ ! अरे यहाँ तो आ ! अरे उधर मत जा ! अरे ! यह मेरा खखार का वर्तन तो उठाकर फेंक दे। हाय ईश्वर........!"

(१२)

नकुल बाहर आए, और रामकिशोर को प्रणाम किया।

उन्होंने सूखे-मुँह कहा—'नकुल जरा मेरे साथ चलोगे ?'

नकुल इस समय इनकार नहीं कर सकते। रामकिशोर

उनके घर अपमानित हुए हैं, इसके लिये उनके मन में बड़ी लज्जा है।

पूछा—'कहाँ ?'

'ज़रा घर तक'

नकुल ने भीतर झाँककर पिता की तरफ देखा। शंकरलाल शिथिल होकर खाट पर पड़े थे। उन्होंने कहा—'चलिए !'

रास्ते-भर दोनों में कुछ बात न हुई।

नकुल के साथ रामकिशोर सीधे बैठक-खाने में पहुंचे। एक कुर्सी पर उसको बैठाया, दूसरी पर आप बैठे।

रामकिशोर का भाव देखकर नकुल खूब आश्चर्य कर रहे है और कहें, लज्जा और संकोच उनके बढ़ते जा रहे हैं,

पर क्षमा माँगकर इस लज्जा और संकोच को कैसे दूर करें ? क्षमा माँगना तो उनका स्वभाव ही नहीं। जी नहीं, दंभ या अहंकार के कारण नहीं, बल्कि स्वभाव के कारण। हाँ, तो क्षमा मांगना तो वह जानते नहीं, तब लज्जा उनकी कैसे दूर हो ? और जब रामकिशोर उस विषय में बिल्कुल चुप हैं, और आचरण में भी उनके नाटकीय परिवर्तन आ गया है, तो आप ही बताइये—वह लज्जा कितने गुनी न बढ़ जायगी ?

'नकुल' मैं कड़ा जी करके आज तुमसे कुछ बातें कहूँगा ?"—सामने की छोटी मेज़ पर कुहनी टेककर आख़िर रामकिशोर बोले।

नकुल ऐनक के पीछे छिपे, अपने दोनो जिज्ञासु नेत्रों से उन्हें ताकने लगे !

'बताओ तुम्हें कितना वेतन मिलता है ?'

'वेतन ? आय....डेढ़ सौ....!'

'डेढ़ सौ !—अच्छा—अच्छा, अच्छा.......।'

तीन बार 'अच्छा-अच्छा' कहकर रामकिशोर चुप हो गए। यानी जो बात वह कहना चाहते हैं, मुँह से निकालते डरते हैं।

जानें कैसी वह बात है ?

आखिर आँखें कुछ झुकाकर उन्होंने कह ही डाला—'नकुल! अगर तुम ब्याह कर लो—'

नकुल की आँखें हठात् चमकने लगीं।

'........अगर तुम ब्याह कर लो, तो तुम दोनों स्त्री-पुरुषों का खर्च अनुमानतः कितने में चल सकता है ?'

हैं !यह बात क्या ? यह रामकिशोर क्या पूछ रहे हैं ? कोई सिर-पैर ही नज़र नहीं आता !

जब नकुल सहसा कुछ उत्तर न दे सके, तो रामकिशोर ने दोहराया 'बोलो, अगर तुम ब्याह कर लो, तो तुम्हारा खर्च कितने में चल सकता है ?"

'बात यह है'—नकुल ने इस प्रश्न का असली अभिप्राय न समझ कर कहा—'अगर मैं अपने इच्छा अनुसार खर्च करूँ तो पचास रुपए काफ़ी हैं।'

'हूँ !....अपने इच्छानुसार कैसे ?

'अर्थात यदि मुझे पत्नी के लिये अपने से अधिक खर्च करने को विवश न होना पड़े।'

'ठीक !' रामकिशोर ने हठात् नकुल से आँखें मिलाकर कहा—'अब मैं तुम्हें एक सलाह देना चाहता हूँ।'

और वह यह।' जब नकुल ने सलाह सुनने की इच्छा

प्रगट की, तो वह बोले--'तुम अपना आधा वेतन पिता को देकर पृथक् रहने का प्रबंध करो !'

नकुल एक बार आश्चर्यित हुए, फिर सहसा तलमला उठे पहले चेहरा लाल हो गया.......।

पर वह पहला लज्जा का भाव अभी विलीन न हुआ था। कैसे रामकिशोर पर क्रोध करें ? कैसे उन्हें कोई कड़ी बात कहें बस, इस दुविधा में पड़कर उसका क्रोध-भाव क्षण-भर में शांत हो गया, और आँखों में आँसू भरकर वह केवल यह कह सके—'आह ! यह आप क्या कहते हैं ?'

कहकर उन्होंने माथा मेज़ पर टेक दिया। मानो सूरत छिपा लेना चाहते हैं !

रामकिशोर एक बार स्तब्ध हो, गए। नकुल की पितृ-भक्ति का प्रमाण दो-एक बार पहिले भी वह पा चुके ज़रूर थे, तो भी अपनी बात के ऐसे प्रभाव की उन्होंने कल्पना न की थी।

कुर्सी उन्होंने अपने आगे सरकाई, और बड़े प्यार के साथ उनके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—'नकुल ! बेटा नकुल' !

'नकुल' 'प्रिय' 'प्यारे' इत्यादि संबोधन अनेक बार उनके मुँह से निकल चुके थे, पर बेटा नकुल ! यह पहले-ही-पहल.......।

नकुल ने धीरे-धीरे सिर ऊपर उठाया, और विषाद पूर्ण नेत्रों से ताकते हुए कहा—'हाँ, पिताजी !'

'नकुल ! मैं तुम्हें पुत्र समझकर प्यार करता हूँ।'

नकुल ने बिना पलक झपकार कहा—'मैं पिता की तरह

आपका आदर करता हूँ।'

रामकिशोर ने लंबी साँस ली, और कुर्सी पर सीधे बैठकर बोले—'आज कई वर्ष बीत गए'—कहकर क्षण-भर के लिये रुके। 'आज कई वर्ष बीत गए'—उन्होंने कहा—और मैं साफ़-साफ़ अपने मन की बात तुमसे न कह सका।.......तुम बच्चे नहीं हो। क्या कल्पना कर सकते हो—क्या न कह सका। और अब क्या करना चाहता हूँ?'

नकुल बड़े संकट में पड़े। ऐसे संकट में, जिसका अनुभव उन्होंने जीवन में पहलेपहल किया है। कल्पना तो कर सकते हैं—क्यों नहीं कर सकते, और इस समय तो वह कल्पना सत्य का रूप धारण करता जा रहा है। पर उसे कहें कैसे? वह बात उनके मुँह से निकले कैसे?

........'चुप बैठे रहे; बल्कि लजाकर सिर झुका लिया।

रामकिशोर बोले—'मैं समझता हूँ बेटा, सब समझता हूँ। पर ओह! किस मुँह से तुम्हारी तारीफ़ करूँ कि आज तक तुमने अपना भाव व्यक्त न किया!'

क्षण-भर ठहरकर वह फिर बोले—'बेशक, मैं अंगरेज़ी पढ़ा-लिखा हूँ एक मुद्दत तक वकालात भी की है! अंगरेज़ी फ़ेशन से रहता हूँ। पर तुम भी इस बात को अवश्य समझते होगे कि मैं अपने व्यक्तित्व में विशुद्ध भारतीयता छिपाए हुए हूँ।'

'बस, इसलिये'—जब नकुल ने स्वीकृति-सूचक सिर हिलाया, तो वह बोले—'मैं तो तुम से एक अशिक्षित भारतीय की तरह केवल यही पूछूँगा कि क्या मेरी करुणा तुम्हारा चरण-सेवा करने योग्य नहीं है?'

नकुल ठीक इसी बात की कल्पना करते थे, पर सुनकर

न-जाने क्यों उनका कलेजा ज़ोर-ज़ोर से धड़-धड़ करने लगा, और उस निर्विकार, साधु-चित्त युवक के सारे शरीर में सहसा रोमाँच होकर चेहरे पर मिनट-मिनट में नया रंग आने-जाने लगा।

'बेटा नकुल!' रामकिशोर ने द्रवित कंठ से कहा—'एक मुद्दत से, जब से तुम्हें देखा है, मैं अपनी इस लालसा को हृदय में छिपाए हुए हूँ। आख़िर आज समय देखकर खुल ही पड़ा। शायद बीच-बीच में मेरी बातों से तुम्हें इसका आभास भी मिला हो....क्यों?-अच्छा, मेरी पहली बात का जवाब दो!'

नकुल तब भी न बोल सके। जीवन में अपनी किस्म का यह पहला प्रश्न उनसे हुआ है। कैसे सहसा उसका उत्तर दें?

रामकिशोर ने कहा—'बोलो, नकुल, बोलो। मैं तुमसे इतने संकोच की आशा नहीं करता।'

हठात् नकुल ने कड़ा जी करके कह डाला—'वह स्वीकार न करेंगी?'

'न न, क्यों नहीं? यह कल्पना तुमने कैसे की?' रामकिशोर ने आगे झुककर जल्दी से पूछा।

नकुल चुप रहकर अपनी बात कहने के लिये शब्द ढूँढ़ने लगे।

रामकिशोर अधीरता-पूर्वक बोले-'हाँ बताओ, यह कल्पना कैसे तुमने की?

आँखें नीची किए-किए ही नकुल ने कहना शुरू किया—' बहुत-सी बातें। मै फ़ैशन से नहीं रहता, ज्यादा हँसने-उछलने का मेरा स्वभाव नहीं....।और सबसे कड़ी बात यह कि मेरे घर में, मेरे पिता की सेवा करना उन्हें गँवारा नहीं हो सकता।'

रामकिशोर इसका उत्तर सोच चुके हैं। 'देखो भाई--' उन्होंने कहा--'सबसे पहिले तो यह बताओ--करुणा में बचपन के अनिवार्य अल्हड़पन के अतिरिक्त तो तुम्हें कोई दोष दिखाई नहीं देता ?'

नकुल ने धीरे से सिर हिला दिया। अर्थात् नहीं।

'--जो मेरा ख़याल है, तुम्हारा सत्संग पाकर कुछ ही दिन में दूर हो जायगा। क्यों ?'

नकुल फिर लजा-से गए। उनका सत्संग !--कहने लगे--'खैर, जो भी हो।'

अच्छा, अब तुम्हारे व्यक्तित्व के संबंध में कह दूँ। करुणा तुम पर श्रद्धा करती है, तुम्हारा मान करती है, और मन-ही मन तुम पर प्रेम भी करती है। पर उसकी वही स्वाभाविक उच्छृं-खलता तुम्हें इतना रूखा और सादा देखकर तुम्हारे प्रति उसे चिढ़ा भी देती है। समझे ?--तुम्हें याद होगा, कुछ समय हुआ मैंने इशारे-इशारे में तुम्हें अँगरेजी पोशाक पहनने की प्रेरणा की थी.......।

नकुल को वह कपड़े देने की बात याद आ गई।

'मगर जब तुम्हारी अनिच्छा देखी, तो अधिक आग्रह न किया। मैं स्वयं भी समझता हूँ कि तुम्हारा व्यक्तित्व जिस साँचे में ढला है, उस पर लक्-दक् फ़ैशन की गुंजाइश नहीं है।'

'मैं यह भी जानता हूँ कि सारा बाह्य आकर्षण केवल कुछ महीने तक मनुष्य को संतुष्ट करता है। बस, यही बात मैंने धीरे-धीरे करुणा को समझाई। असल में वह समझी है या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता, पर भाव उसने ऐसा प्रकट किया है कि समझ गई। मगर संसार का ज्ञान उससे बहुत अधिक मुझे है,

--'यह कौशल !--यह कोशल !'

बस, तीन बार 'यह कौशल' --'यह कौशल, के अतिरिक्त वह कुछ न कह सके।

रामकिशोर ने देखा, उनका भाव धीरे-धीरे बदल रहा है। बस, यही उन्हें अभीष्ट न था। उन्होंने क्या किया? आप इसकी कल्पना नहीं कर सकेंगे?

.......उन्होंने हठात् सिर से टोपी उतार कर नकुल के पैरों में पटक दी, और गिड़गिड़ाकर कहा–'बेटा! तुम मेरे पुत्र हो....।'

वृद्ध का गला रुँध गया, और आंखों में से आंसू बहने लगे!

निर्मल, निष्कपट, निर्विकार नकुल के मन में जो घोर विकार का भाव उदित हुआ था, वृद्ध के इस अभूतपूर्व आचरण से क्षण-मात्र में वह दूर हो गया, और टोपी हाथ में लेकर उन्होंने कहा--'अरे !यह आप क्या करते हैं?'

'बस बेटा! टोपी की लाज रखकर मेरी बात मान लो। देखो; यह बीस लाख की संपत्ति, यह बड़े दुखों मे पाली कन्या, यह आदर पूर्ण, उत्तराधिकार मै कुपात्र को सौंपना नहीं चाहता मेरे अज़ीज़, मेरी इस एक-मात्र लालसा को अपूर्ण न रक्खो!'

मगर बात आगे बढ़ न सकी। सहसा क्या हुआ?--करुणा कमरे में घुस आई।

दोनों ने उस तरफ देखा। उसके मुख पर कोई भाव नहीं था। इन दोनों के वार्तालाप की ज़रा-सी छाप उसके मुख पर नहीं थी। उसने साधारण भाव से नकुल को नमस्कार किया।

हाँ, ज़रा-सी मुस्किराहट, ज़रा-सी लज्जा, आज पहले-पहल उसकी आँखों में दिखाई दी!

रामकिशोर खड़े हो गए। 'बस मैं चला, तुम सोच लो'! कहकर वह कमरे बाहर हो गए।

जाने, करुणा और नकुल की नई भेंट से घटना कहाँ-की -कहाँ जा पड़ती, और क्या होता, मगर वार्तालाप आरंभ भी न हुआ था कि उसी समय रामशरण हँसता हुआ कमरे में घुस आया और बोला—'ओह! आप यहाँ बैठे हैं, मैं आपके घर पिता जी के पास होकर आया हूँ!'

पिताजी के पास ! पिताजी के पास !!

(१३)

नकुल के गुह्य भावों को समझने में हमें अतुल परिश्रम करना पड़ेगा, अतिएव अब हम वैसा प्रयत्न न करके उनकी बाह्य चेष्टाओं पर ही दृष्टिपात करेंगे। रामकिशोर की बातों पर विचार करना है। घर इस समय नहीं जा सकेंगे फिर कहाँ जाय ?

क्षण-भर सोचकर नकुल ने कुमारी के घर जाना स्थिर किया उस दिन उससे वादा किया था, कभी आपके घर आऊँगा। वह वादा अभी तक पूरा नहीं हुआ। चलें, आज वहीं चलें !

मेरे ईश्वर ! यह कैसा विचार नकुल के मन में आ गया ! अब, जब करुणा के पक्ष में भयानक संघर्ष उन्हें करना है, रामकिशोर की बात मानने को तैयार होना है, तब वह कुमारी के पास जाने का विचार क्यों कर रहे हैं ?

पर हम उन्हें समझाएँ कैसे ?

कुमारी आज घर में अकेली है। मा गई है करुणा के घर। करुणा की मा की अवस्था दिनों दिन ख़राब होती जा रही है। बचपन की सखी से कैसे न एक बार भी मिलने जाती ? अभी

दयावती गई है, और अभी कुमारी ने एक गीत गुनगुनाते हुए बर्तन माँजना आरंभ किया है !

सहसा किसी ने दर्वाजे पर थपकी दी। इस छोटे-से अशिक्षित परिवार के अतिथि-अभ्यागत भी बहुधा अशिक्षित ही होते है, और दर्वाजे पर थपकी देने की जगह, जोर से धक्का देकर, चिल्लाकर पुकारना ही उनके लिए अधिक स्वाभाविक है। यह थपकी सुनकर एक बार चिहुंक उठी। कौन है ? मा तो अभी गई है ! आगन्तुक कोई नया व्यक्ति है।

कुमारी के मनोभाव पढ़ने और उनका प्रकाशन करने से हम नहीं डरते, और अपनी सर्वज्ञता पर अविश्वास नहीं करते । आप सुनिए, उसके मन में यह थपकी की आवाज सुनकर हठात यह भाव उठा कि आगंतुक नकुलचंद हैं।

अब इसे 'मेंटल टेलीपैथी' कहिए, या 'थॉटवेव्ज' की करामात समझिए, या संयोग का खेल कह सकते हैं। कुमारी जिन्हें भुलाए नहीं भूलती, और जिनका वादा उसे आज तक याद है, इस थपकी की आवाज ने एक बारगी वह साधु-मूर्त्ति उसकी आँखों के आगे ला खड़ी की ।

तब वह अध-मँजे बर्तन छोड़ सने हाथों दर्वाजे की तरफ दौड़ पड़ी।

साँकल को उसने हाथ लगा दिया। सहसा सोचा, देख तो लें। किवाड़ की सध में आँख लगाई। सचमुच वही थे । नंगे सिर, चश्मा लगाए, मोटी क़मीज, ऊँची धोत और चप्पल पहने ओह ! कैसी मूर्ति थी वह ! कितना पवित्र व्यक्तित्व था ! कैसी उच्च आत्मा थी।

किवाड़ की संध में आँख लगाए कुमारी मिनट-भर इस साधु-चरित्र युवक के दर्शन-सुख में विभोर रही ।

सहसा किवाड़ फिर थपथपाया गया। कैसी कर्ण-मधुर आवाज़ थी! कैसा नेत्ररंजक कर-संचालन था! और इधर कैसी मधुर और पवित्र तन्मयता थी!

साँकल तक उसने दुबारा हाथ बढ़ा दिया था। हठात हाथों में लगी मिट्टी की तरफ़ उसका ध्यान आकृष्ट हुआ, और फिर तत्क्षण ही अपनी मैली, दुर्गंधित धोती अपने अस्त-व्यस्त केश और बे-धुले पैरों का उसे स्मरण हो आया।

हाय! कैसी पगली है वह! कि बिना उस तरफ़ ध्यान दिए, अंधाधुंध कुंडी खोलने दौड़ पड़ी।

और तब सहसा अपने प्रति उसका मन ग्लानि के भाव से भर उठा।

छिः! ऐसे अधीरता किस काम की! ऐसा पागलपना अत्यंत अनुचित! ऐसा उद्वेग घोर लज्जा-पूर्ण........!

भला इसमें, खुली अवस्था सिर, गंदे हाथ-पैर, दुर्गंधित वस्त्र, कैसे उस विद्वान से भेंट करे! माना वह-फ़ैशन-परस्त नहीं हैं, पर सफ़ाई-पसंद तो है। क्या मुँह लेकर वह इस वेश में उसके सामने पड़े? आख़िर सभ्यता और शिष्टाचार भी तो कोई वस्तु है! छिः! कैसी लज्जा की बात है!

तब वह पैर दबाकर पीछे हटी। कहीं सुन न ले। अभी धोती बदलकर, हाथ-पैर धोकर, आकर कुंडी खोलेगी।

और जो इतनी देर में वह चले जायँ? हाय! यह विचार उसके मन में न आया। अभी गई, हाथ-पैर धोए, धोती बदली और आई! देर ही कितनी लगती है! दो-तीन मिनट भी नहीं!

थपकी की आवाज़ अब की बार कुछ जोर से फिर

सुनाई दी !

हाय ! कैसे कह दे, ठहरे रहो, मैं घर में ही हूँ ! धोती बदलकर- हाथ-पैर धोकर आती हूँ। हाय ! कैसे वह उद्वेग और औत्सुक्य से उनकी रक्षा करे ? लाचार है, अब तीन-चार मिनट में आई ।

हाथ-पैर धोए, और कोठरी में घुस गई। कौन-सी धोती बदले ? सभी मैली, सभी गंदी, सभी दुर्गंधित !—केवल एक थी, जो करुणा के घर पहनकर गई थी, वह वहीं रह गई अरे ! हाँ, याद आया........।

उस दिन जो रेशमी साड़ी करुणा ने उसे पहनाई थी वह वापस न ली। अब वह तह की हुई, उसके बक्स में रक्खी है, उसे ही क्यों न पहन ले ? पर क्यों, भला पराई साड़ी ! नकुल के सामने कैसे पहने ? हूँह ! उन्हें क्या पता ? उन्होंने तो उस दिन भी वह साड़ी उसी के शरीर पर देखी थी ! वह क्या समझेंगे........।

वह क़ीमती समय उसने अधिक सोच-विचार में न बिताया। झटपट बक्स खोलकर उसने साड़ी निकाली, और ग़जब की फ़ुर्ती से पहन ली। बक्स खुला छोड़, पल्ला सिर पर रखती हुई वह तब अंधाधुंध बाहर की तरफ चली।

पर चौक में सब तरफ बर्तन फैले हुए थे। उन्हें बैठावेगी कहाँ ? उसने भीतर से लाकर बर्तनों के ऊपर एक दरी डाल दी, और जल्दी-जल्दी थोड़ी दूर में कुछ जगह साफ़ करके एक पुराना और फटा आसन बिछा दिया। हाय ! इस आसन पर आकर वह बैठेंगे ! हाय ! कोई नया आसन तो है नहीं ! क्या करे ? मजबूर है ! अब अधिक देर नहीं करनी चाहिए। क्या जाने, चले जायं। अब तो बहुत देर से थपकी की आवाज़

भी सुनाई नहीं पड़ी है! अरे! क्या चले गए? न, न, खड़े होंगे, जल्दी जाऊँ, जल्दी! जल्दी! जल्दी!

तब वह लड़खड़ाते पैरों से किवाड़ खोल ने चली

आवाज़ नहीं आ रही थी। बाहर किसी के खड़े होने का आभास भी नहीं मिलता था। हाय राम! क्या चले गए? न, सीढ़ियाँ उतर कर गली में खड़े होंगे। जा नहीं सकते। चले गए हों.......! न, न, गए नहीं.... हे राम! गए नहीं....

तब धड़कते कलेजे से उसने धीरे-धीरे साँकल खोल दी।

साँकल उसने आवाज़ के साथ खोली, और पीछे हट गई। यानी वह चाहती थी, नकुलचंद्र स्वयं किवाड़ों में धक्का देकर भीतर आवें। क्यों ऐसा चाहती थी, इसका क्या वैज्ञानिक विश्लेषण हम कर सकते हैं? हम तो यही कह सकते हैं कि उसे साहस न हुआ, अथवा कविता की भाषा में यह भी कहा जा सकता है कि मिलन की अंतिम सीढ़ी पर पैर रखते नायिका लजाती थी, और नायक को उतारना चाहती थी।

पर हाय! न किसी ने दर्वाज़े में धक्का दिया, और न भीतर आया। — क्या चले गए? हाय! क्या चले गए?

तब कुमारी ने गिरते-उठते, धड़कते हृदय से आगे बढ़कर धीरे-धीरे दर्वाजा खोल दिया।

कोई न था। गली में भी कोई न था। सामने सड़क तक कोई आता-जाता दिखाई न देता था।

हाय! चले ही गए, चले ही गए!

किवाड़ थामे धरती की तरफ़ देखते हुए, कुमारी मिनट-भर पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ी रह गई। हाय! कैसे उसका जी माने कि वह चले गए? कैसी मूर्ख है वह! कि घर आए देवता को

लौटा दिया। हाय ! क्या वह मैली धोती पहने उसका तिरस्कार करते ? ऐसे साधु पुरुष, ऐसे निर्विकार, सीधे-सादे व्यक्ति क्या उसके खुले केश देखकर विरक्ति प्रकट करते ? न, कभी नहीं, कैसी वह पागल हो गई कि इतनी-सी बात उसकी समझ में न आई।

हाय ! यह क्या हो गया ? उसने यह क्या कर डाला ? हे ईश्वर, अब कौन उसे समझाए ?— कौन उसके उद्वेग और कष्ट को समझे ? कौन उसके ग्लानि-युक्त हृदय को सांत्वना दे ?

चेहरा उसका लाश की तरह पीला पड़ गया, रक्त की जैसे एक-एक बूँद सुत गई, और हाथ-पैरों का जैसे दम निकल गया !

तब वह शिथिल शरीर लिए, लड़खड़ाते पाँवों से सोने की कोठरी में लौटी और धड़ाम से खाट पर गिर पड़ी।

क्षण-भर बाद ही उसका शरीर हिलने लगा, और सिसक-सिसक कर रोने की आवाज़ आने लगी।

हाय ! वह कब से प्रतीक्षा कर रही थी ! कब से वह उनकी राह में आँखें बिछाए बैठी थी ! कब से वह न-जाने कहाँ-कहाँ की बातें, कैसे-कैसे प्रश्न, कैसी-कैसी शंकाएँ और न-मालूम क्या-क्या अपने हृदय में छिपाए हुए थी ? ओफ़ ! घर आए देवता लौट गए ! इस पाप का क्या प्रायश्चित्त वह करे ? इस महाभयकर अनुतापाग्नि को किस प्रकार शांत करे ?

और इस गंभीर, उदासीन, समझदार कुमारी का रुदन उत्तरोत्तर बढ़ने ही लगा।

कुमारी का चरित्र, इस प्रकरण को पढ़कर, पाठकों की दृष्टि में गिर गया होगा। हम उसके पक्ष में कुछ कहना अपना धर्म समझते हैं।

सबसे पूर्व हमें उस घटना का स्मरण दिलाना होगा, जब करुणा ने, उस दिन, मासिक पत्र में कुमारी के लेख देखे थे। सच कहें, तो वे लेख प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र के लेखों के रूपांतर थे। रूपांतर से मतलब नक़ल नहीं—जिन समस्याओं और दार्शनिक तत्वों पर प्रोफ़ेसर साहब ने एक दृष्टि-कोण से अपने विचार प्रकट किए थे, कुमारी ने उन्हीं तत्वों को लेकर दूसरों दृष्टि-कोण से उन पर विचार किया था, और इस प्रकार दोनो का अध्यात्मिक और परोक्ष संबंध स्थापित हो गया था।

यह अध्यात्मिक स्नेह और अनुराग कैसा गंभीर और वैसा उन्मादक होता है, इसको तो बस भुक्तभोगी ही ठीक जानते हैं। जब दोनो मिलते हैं। 'तासीरे इश्क़ होती है दोनो तरफ़ जरूर।' हम नकुल के मनोभावों को प्रकट करने में हिचकते हैं, फिर भी उनकी चेष्टा से आपने अवश्य कुछ-न-कुछ आभास पाया ही होगा। इस अध्यात्कि स्नेह में उस एक ही भेंट ने एक नए भाव की सृष्टि कर दी. और नकुल के इस प्रकार लौट जाने पर कुमारी का यह सारा विलाप स्त्री-हृदय के एक साधारण जानकार के लिए भी स्वाभाविक, शुद्ध और क्षंतव्य ही जँचेगा।

(१४)

कुमारी खाट पर पड़ी, गंदे तकिए में मुँह छिपाए सिसक-सिसक कर रो रही थी।

सहसा एक चमत्कार हो गया।

किसी ने जोर से उसकी पीठ पर हाथ मारा, और कहा—"अरी ओ दीवानी, यहाँ पड़ी क्यों रो रही है?"

रोना उसका अकस्मात् रुक गया, और बिना आँसू पोंछे ही चमक कर उसने देखा, करुणा है।

करुणा ? जी हाँ, करुणा ।

पलक मारते कुमारी उठकर खड़ी हो गई, और आँसू पोंछते हुए हँसने की चेष्टा करने लगी ।

पर हिचकी बँधी हुई थी, चेष्टा व्यर्थ हुई ।

'अरे ! अरे ! बता तो—क्यों रोती है ?'

भला कुमारी बता कैसे सकती है ! चुप रही, और जी सभालने का प्रयास करने लगी ।

'अच्छा चल, बाहर चल ।' करुणा बोली—'देख, बाहर चलते ही हँस न पड़े तो मेरा नाम करुणा नहीं ।'

सहसा कुमारी की आँखें चमक उठीं । गला साफ़ करके बोली—'क्यों ?'

'बस वहीं चल, बाहर ही मालूम होगा ।'

'बता तो—बता तो ....' सुखद आशंका ने कुमारी का सारा रुदन समाप्त कर दिया था ।

'जिनके स्वागत की तैयारी थी, वह आ गए हैं !'

'क्या ? कैसा स्वागत ?'

'जो घर आकर लौट गए थे, उन्हें मैं फिर पकड़ लाई हूँ !'

लज्जा और सुखद आशंका के पहले भाव ने उसका चेहरा लाल कर दिया ।

'वाह !' अब वह अपनी कैफ़ियत देने लगी—'मैं ने किस के स्वागत की तैयारी की थी ? कौन मेरे घर आकर लौट गए थे ?'

करुणा उसकी आँखों में आँखें मिलाकर ज़ोर से हँसपड़ी, और फिर उसके दोनोंकंधों पर अपने दोनो हाथ रखकर बोली—

'क्यों ? उड़ती है !

कुमारी जैसे मुष्टियोग-साधन करने लगी। हास्य, उल्लास जैसे उछल कर बाहर आना चाहता था, पर हँसते ही बात बिगड़ जायगी। गंभीर बनकर बोली--'सच्ची ! बता तो, कैसे उड़ती हूँ क्या गोरख-धंधा कर रही है ?'

'री पगली !' करुणा ने कहा--'देख, सारी पोल खोल दूँगी।'

'कैसी पोल ?'

'अच्छा, ले बता, रो क्यों रही थी ?'

'रो क्यों....? मा चली गई थी अकेले जी घबराने लगा था।

'ठीक !' करुणा पूछने को थी, यह नई साड़ी क्यों पहने है ?' पर-न पूछ सकी। शायद उसका दिल दुखे। कहने लगी--'एक बात का जवाब तो तूने दे दिया। अच्छा, अब यह बता कि बाहर का दर्वाज़ा खुला क्यों था, और चौक में दरी किसलिये बिछा रक्खी थी।'

'मैं तो, मैं तो.......' कहते-कहते कुमारी के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी, मुँह से शब्द न निकल सका।

'अच्छा, बस हो लिया, मैं तो-मैं तो।' अब करुणा ने उसे दर्वाजे की तरफ़ धकेल कर कहा--'व्यर्थ की सफाई देना चाहती हैं।'

कुमारी ने इसी में कल्याण समझा, और बाहर आई।

बाहर दहलीज़ के पास पतलून की जेबों में हाथ डाले रामशरण खड़ा प्रोफेसर नकुलचंद्र से वार्तालाप कर रहा था।

आ गए ! आ गए ! आख़िर आ ही गए !!

कुमारी की इच्छा एक बार हिचकी बाँध कर रोने की हुई

पर परिस्थिति भी देखी जाती है ! न रो सकी, और यथासाध्य अपने उस आवेग के भाव को छिपाकर उसने सहास्य-मुख नकुलचंद्र और रामशरण को नमस्कार किया।

पर अब वह अपने भाव चाहे जितना छिपावे, हमसे नहीं छिप सकता। हम तो उसके हृदय में पैठ चुके हैं, और उसके अंतप्रदेश को अपने सामने देख रहे हैं। एक अद्भुत आनंद एक अभूतपूर्व सुख, एक अनिर्वचनीय संतोष की लहर उसके हृदय-तल पर दौड़ गई !

कुमारी जब सिर झुकाकर नकुल को नमस्कार कर रही थी तो करुणा ने रामशरण से आँखें चार की, और उदासी और निराशा की मुस्कान उसके ओठों पर दिखाई दी। रामशरण भी मुस्कुराया। पर उसकी मुस्कान करुणा की मुस्कान से कितनी भिन्न थी, और क्या भिन्नता थी, यह मैं आपको नहीं बता सकता।

'आइए, बैठें !' कहकर रामशरण चूतड़ टेककर, पैर फैलाकर दरी के एक कोने पर बैठ गया।

हाय ! इस गंदी, फटी, सड़ी हुई दरी पर वह बैठेंगे ! पर किया क्या जाय ?

करुणा दौड़कर भीतर से एक कपड़ा और उठा लाई और चौक में बिछा दिया तब सब लोग बैठ गए।

करुणा ने कहा—'एक ही दरी बिछाई थी; दो आदमियों के लिये काफी थी। क्यों कुम्मो ?'

यह करुणा कैसी पागल है। हाय ! हाय ! यह क्या कह रही है ! क्या अच्छी तरह रुसवा करने की ठानी है ?

कुमारी ने अत्यंत विनीत भाव से उसकी ओर देखा।

यह नज़र काम कर गई। कुमारी को लज्जित करने का लोभ करुणा ने त्याग दिया।

पर रामशरण कैसे माने ? कहने लगा—'परंतु यह समझ में नहीं आया कि प्रोफ़ेसर साहब लौटे क्यों जारहे थे ?'

नकुलचंद्र ने नम्र भाव से कहा—'मैंने कई बार दरवाज़े पर थपकी दी, पर दरवाज़ा न खुला। समझा, शायद सुना न हो, या घर में न हो, बस चला गया।'

रामशरण तो एक ख़ास बात की क़सम खाकर आया है। वह नकुल या कुमारी का पिंड आसानी से कैसे छोड़ दे ? वह तो इस कमज़ोर जगह पर खूब प्रहार करेगा, खूब प्रहार करेगा !

पर हठात् यह करुणा ने आँख मारकर किस बात का संकेत कर दिया ! इस एक ही संकेत से कैसे रामशरण की नस-नस ढीली पड़ गई ? और, कैसे पिटा-सा मुँह लेकर चुप हो गया ?

करुणा अब कुमारी पर दयार्द्र हो उठी है। वह उसे संकट में डालना नहीं चाहती, बल्कि इस प्रसंग को ही बदलना चाहती है, और कोई नई बात चलाकर उसका संकोच-भाव नष्ट करना चाहती है।

कहने लगी—'हाँ, देखो कुम्मो, उस वक्त तुमने व्यर्थ पढ़ना छोड़ दिया। अगर पढ़े जाती, तो अब तक बी० ए० पास कर ही लेतीं।'

कुमारी सहसा करुणा का परिवर्तित भाव न समझी उसके मन में हुआ कि यह भी उसे अपमानित करनेवाली किसी बात की भूमिका है। एक बार तो चुप ही रहने की इच्छा हुई पर ऐसे कब तक काम चल सकता था ? कहने लगी—

पर परिस्थिति भी देखी जाती है ! न रो सकी, और यथासाध्य अपने उस आवेग के भाव को छिपाकर उसने सहास्य-मुख नकुलचंद्र और रामशरण को नमस्कार किया।

पर अब वह अपने भाव चाहे जितना छिपावे, हमसे नहीं छिप सकता। हम तो उसके हृदय में पैठ चुके हैं, और उसके अंतप्रदेश को अपने सामने देख रहे हैं। एक अद्भुत् आनंद एक अभूतपूर्व सुख, एक अनिर्वचनीय संतोष की लहर उसके हृदय-तल पर दौड़ गई !

कुमारी जब सिर झुकाकर नकुल को नमस्कार कर रही थी तो करुणा ने रामशरण से आँखें चार की, और उदासी और निराशा की मुस्कान उसके ओठों पर दिखाई दी। रामशरण भी मुस्कुराया। पर उसकी मुस्कान करुणा की मुस्कान से कितनी भिन्न थी, और क्या भिन्नता थी, यह मैं आपको नहीं बता सकता।

'आइए, बैठें !' कहकर रामशरण चूतड़ टेककर, पैर फैलाकर दरी के एक कोने पर बैठ गया।

हाय ! इस गंदी, फटी, सड़ी हुई दरी पर वह बैठेंगे ! पर किया क्या जाय ?

करुणा दौड़कर भीतर से एक कपड़ा और उठा लाई और चौक में बिछा दिया तब सब लोग बैठ गए।

करुणा ने कहा—'एक ही दरी बिछाई थी; दो आदमियों के लिये काफी थी। क्यों कुम्मो ?'

यह करुणा कैसी पागल है। हाय ! हाय ! यह क्या कह रही है ! क्या अच्छी तरह कलई करने की ठानी है ?

कुमारी ने अत्यंत निर्लीन भाव से उसकी ओर देखा।

यह नजर काम कर गई। कुमारी को लज्जित करने का लोभ करुणा ने त्याग दिया।

पर रामशरण कैसे माने? कहने लगा—'परंतु यह समझ में नहीं आया कि प्रोफ़ेसर साहब लौटे क्यों जारहे थे?'

नकुलचंद्र ने नम्र भाव से कहा—'मैंने कई बार दरवाजे पर थपकी दी, पर दरवाजा न खुला। समझा, शायद सुना न हो, या घर में न हो, बस चला गया।'

रामशरण तो एक खास बात की क़सम खाकर आया है। वह नकुल या कुमारी का पिंड आसानी से कैसे छोड़ दे? वह तो इस कमजोर जगह पर खूब प्रहार करेगा, खूब प्रहार करेगा!

पर हठात् यह करुणा ने आँख मारकर किस बात का संकेत कर दिया! इस एक ही संकेत से कैसे रामशरण की नस-नस ढीली पड़ गई? और, कैसे पिटा-सा मुँह लेकर चुप हो गया?

करुणा अब कुमारी पर दयार्द्र हो उठी है। वह उसे संकट में डालना नहीं चाहती, बल्कि इस प्रसंग को ही बदलना चाहती है, और कोई नई बात चलाकर उसका संकोच-भाव नष्ट करना चाहती है।

कहने लगी—'हाँ, देखो कुम्मो, उस वक्त तुमने व्यर्थ पढ़ना छोड़ दिया। अगर पढ़े जाती, तो अब तक बी० ए० पास कर ही लेतीं।'

कुमारी सहसा करुणा का परिवर्तित भाव न समझी उसके मन में हुआ कि यह भी उसे अपमानित करनेवाली किसी बात की भूमिका है। एक बार तो चुप ही रहने की इच्छा हुई पर ऐसे कब तक काम चल सकता था? कहने लगी—

'मेरा भाग्य बहन, और क्या कहूँ ?'

'छिः ! छिः !' अब करुणा को बात बनाने का रास्ता मिल गया। कहने लगी—'भाग्य किस बला का नाम है ? अरे तुम ऐसी बुद्धिमती होकर भी काल्पनिक भाग्य का आश्रय लेती हो ?'

कुमारी ने कहा—'काल्पनिक क्यों ? भाग्य अनुकूल हुए बिना क्या मनुष्य को अपने किसी प्रयोग में सफलता मिल सकती है ? विद्या, धन, सुख दुख ये सब भाग्य के आधीन है।,

-अरे ! अरे! कैसी बात करती हो ! यह बड़ी कायरता की बात है........!'

'बेशक !' रामशरण ने कहा—'भाग्य तो मन को संतोष देने के लिये प्रमादी, आलसी और निरुद्यमी मनुष्यों का एक सहारा है ! कुछ करना नहीं, धरना नहीं, हाथ-पर हाथ धरे बैठे रहे, और जब असफलता हुइ, तो ठंडी साँस लेकर कह दिया—भाग्य की गति ! छिः ! इसी मनोवृत्ति ने हमारे देश को डुबा दिया !'

करुणा ने कहा—'भाग्य या ,कर्म' है क्या चीज ? और, मनोहर या भावी से क्या अभिप्राय है ? जो कुछ कर लिया जाय, उसी का नाम कर्म है और जो कुछ हो जाय, वही भावी है ! कोई दैवी शक्ति भाग्य का रूप धरकर हमारी गति विधि का संचालन करती है, यह कोरी भ्रान्ति है ! समझी ? क्यों ? अब चुप क्यों हो गई ?'

कुमारी ने कहा—'बहन, वाद-विवाद करने की तो मुझमें योग्यता नहीं, पर यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि पुरुषार्थ भाग्य के सामने कोई वस्तु नहीं। पुरुषार्थ आशाओं और कल्पनाओं के

ऊंचे-ऊँचे क़िले बनाता है, और भाग्य क्षण-भर में उन्हें चूर-चूर कर देता है.......।'

'यह संयोग है!' करुणा ने कहा—'अगर सफलता के मार्ग में रुकावटें न हों, अगर संयोग और दुर्घटनाओं की बाधा न पड़े तो सफलता का कुछ मूल्य ही न रह जाय, और संसार के किसी काम में कुछ दिलचस्पी ही न रहे।'

'खर, तुम विदुषी हो, तुम तर्क के बल पर स्याह को सफेद सिद्ध कर सकती हो, मैं तर्क तो तुमसे क्या किसी से भी कर ही नहीं सकती, पर यह मेरी दृढ़ धारणा है कि मनुष्य भाग्य से लड़कर कदापि नहीं जीत सकता, और भाग्य के ही हाथ की कठपुतली बनकर रहता है। और, मेरा तो विश्वास है कि इन समस्याओं पर तर्क करना भी व्यर्थ है, क्योंकि तर्क से ये सुलझने की जगह अधिकाधिक उलझती ही हैं।'

'अब यह तो हठ-धर्मी और अंध विश्वास है।'

सहसा रामशरण ने कहा—'प्रोफेसर साहब, आप चुप क्यों हैं? आप कुछ कहिए न? आपका इस संबंध में क्या मंतव्य है

'मेरा मंतव्य?'—नकुलचंद्र ने क्षण भर विचारकर कहा—मेरा मंतव्य आपके विरुद्ध है!'

'यानी?'

'यानी मनुष्य की सफलता-असफलता में प्रारब्ध का हाथ अवश्य होता है।'

करुणा ने कहा—'जरा स्पष्ट कीजिए।'

नकुल ने कहा—'प्रतिक्षण मनुष्य के अनेक संस्कार बनते रहते हैं। उन संस्कारों के अनुसार मनुष्य को कुछ निर्दिष्ट परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है। मनुष्य-योनि में आकर मनुष्य

'क्या ?'

'झूठ बोले ?'

'हाँ।'

'क्यों ?'

फिर पूछ लेना।'

'अभी बताओ।'

'अच्छा सुनो, एक तमाशा तुम्हें दिखाया, दूसरा और दिखाना चाहता हूँ।'

'क्या ? कैसा तमाशा ?'

'अब यह मैं पहिले से कभी न बताऊँगा।'

करुणा का हृदय धक-धक कर रहा है, और कुमारी के घर उसके हृदय में जो आग सुलगी थी, वह अब क्रमशः धधकनी शुरू हो गई !

(१५)

'अरे ! यह किधर चल रहे हो ?' एक परिचित गली के मोड़ पर घूमते हुए करुणा ने पूछा।

'चली आओ,' रामशरण ने पीछे पीठ फेरकर कहा—'अभी सब मालूम हो जायगा।'

आगे-पीछे दोनों प्रोफेसर नकुलचंद्र के घर पहुंच गए।

करुणा कई बार यहाँ आई है, पर सदा बाहर से ही लौट गई है; भीतर जाने का अवसर उसे नहीं मिला है, या यों भी कहा जा सकता है कि प्रोफेसर साहब ने नहीं दिया है।

'वह तो हैं नहीं, यहाँ क्यों लाए ?'

करुणा की इस बात का उत्तर रामशरण ने न दिया, और 'अभी आया !' कहकर मकान में घुस गया।

रहना तो हमें करुणा के साथ चाहिए, पर रामशरण की संदेह-पूर्ण चेष्टा देखकर हम उनके पीछे-पीछे जाने को बहुत उत्सुक हैं। अतएव हम चलते हैं, आप भी चलिए।

बुड्ढा सो रहा था, या यों कहें, अफ़ीम की पीनक में ऊँघ रहा था।

रामशरण ने झँझोड़कर उसे जगाया।

'कौन है ? नकुल ? रामशरण ?' उसने जागकर पूछा।

'हाँ, मैं रामशरण हूँ। होश कीजिए।'

'आओ भैया, कहो मैं होश में हूँ।'

बुड्ढे के मुँह से यह अभूतपूर्व स्नेह-संबोधन कैसे निकल पड़ा ?

रामशरण ने कहा—'देखिए, मैं उसे ले आया हूँ।'

'किसे ?'

'उसे ही।'

कहकर उसने बूढ़े के कान में कुछ कह दिया, शायद 'करुणा' का नाम कह दिया, और बोला—

'देखिए, जरा नींद खोलिए, पुत्र की और अपनी रक्षा करना चाहते हैं, तो........।'

बुड्ढे ने हड़बड़ाकर कहा—'हाँ-हाँ ! मेरी नींद खुली हुई है। तुम बेफ़िक्र रहो........हाँ, ले........आओ।'

'देखिए जैसे बताया है, वैसे कीजिएगा, ऐसा न हो, सारे करे-कराए पर पानी फिर जाय !'

'ठीक है, तुम ले आओ।'

'हाँ, देखिए, नींद अच्छी तरह खोल लीजिए, इस वक्त की जरासी दृढ़ता सारे संकट को दूर कर देगी। ऐसा न हो....।'

'अरे तू ला तो सही। बुड्ढे ने सहसा करारे स्वर में कहा— 'मैं अच्छी तरह उस लौंडिया की खबर लूँगा।'

बुड्ढे का पिछला वाक्य सुनकर जाता-जाता रामशरण ठहर गया, और दाँत-तले जीभ दबाकर बोला—'हूँ! यह क्या? हाथ-बाथ न उठा बैठना....।'

'न-न ऐसा नहीं होगा।' कहकर बूढ़े ने दाँत निकाल दिए।

'हाँ, बस, दो-चार कड़ी-कड़ी बातें....।'

कहकर रामशरण करुणा के पास आया।

मेरे ईश्वर! कैसा भयानक षड्यंत्र!

बाहर आकर उसने करुणा से कहा—'आओ!'

करुणा के नेत्रों में न-जाने क्यों दो आँसू छलछला रहे थे, उसने पलक विस्तृत कर उन्हें छिपा लिया, और पूछा— 'कहाँ?'

'भीतर आओ।'

'क्यों? नकुचंद्र तो हैं नहीं; क्या करूँगी?'

करुणा के स्वर में भयानक निराशा, खिन्नता और अव्यक्त वेदना थी। पर रामशरण ने उस पर ध्यान न दिया, वह तो अपने षड्यन्त्र को अंत तक पहुँचाने में ही व्यस्त था उसे उस स्त्री की भावुकता और कोमल-हृदयता का ज्ञान इस समय कहाँ?

कहने लगा—'आओ, उनके पिता से तुम्हारा परिचय करा दूँ !'

करुणा ने निर्णीत और विरक्त स्वर में कहा—'आओ चलो, क्या करूँगी मैं परिचय करके ?'

रामशरण की आँखें एक बार चमक उठीं । क्या पहला तीर ही काम कर गया है ? क्या........

पर जो केवल संदेह हो ? और, वह हल्का ज़ख़्म पलक मारते भर जाय ? न-न, प्रयोग अधूरा न रहने देना

तब उसने आग्रह पूर्वक कहा—'आओ' तो वह तुम्हें बुलाते हैं ।'

'मुझे बुलाते हैं !' करुणा ने ज़रा तवज्जह देकर कहा—'मुझे बुलाते हैं ! पर रहने ही दो, अब क्या करूँगी उनसे मिलकर !'

यानी, अगर वह बुलाते हैं, तो ऐसा न हो, उनकी भेंट उसके निर्णय में बाधक बनकर खड़ी हो जाय !

पर भोली करुणा, देखिए न सत्यता से कितनी दूर है !

रामशरण ने स्वर में मीठी ताड़ना भरकर कहा—'क्या ग़ज़ब करती हो ! जब वह बुलाते हैं' तो तुम्हें मिलना तो चाहिए ही !'

करुणा ने अपना खिन्न मुख उठाकर रामशरण की तरफ़ देखा, और धीरे से मुस्किरा दिया ।

रामशरण इस मुस्किराहट का मतलब तो क्या समझा मगर जो समझा, वह उसके हृदय में आग दहका देने को काफ़ी था । उसने समझा, भावी श्वशुर के समक्ष जाने की

कल्पना मुस्किराहट का रूप धारण करके प्रगट हुई है। ओफ़्! अभी तक भाव नहीं मिटा है!

पर इस मुस्किराहट का असली मतलब, मेरे मनो-वैज्ञानिक-पाठको, क्या आपको भी बतलाना पड़ेगा? आप शायद समझ गए होंगे। पर आप समझे हों या नहीं, मुझे इससे गर्ज़ नहीं, मैं साफ़-साफ़ उसका मतलब समझकर आपको मूर्ख समझने की अनुदारता न करूँगा। आप अगर ना समझे हों तो, इस जिज्ञासा को मन ही में छिपा डालिए। इस जिज्ञासा के छिपा डालने में जो मजा और जो कसक है, उसका अनुभव आपको दो-चार मिनट आँखें बंद करने पर ही हो जायगा।

देखिए, इतना मैं कह दूँ, इस मुस्किराहट को समझने के लिये आप बहुत गहरे जाइए—बहुत गहरे जाइये।

हाँ, तो मुस्किराकर उसने कहा 'अच्छा, चलो!'

दोनों भीतर गए। बुड्ढा अपनी कंजी आँखें पूरी खोले इधर ही ताक रहा था।

कैसी गन्दगी है! ये गहरे-गहरे खड्ड, यह ऊबड़-खाबड़ फ़र्श, यह अँधेरा स्थान! 'रामशरण! तुम मुझे किस नरक में घसीट लाए!' मुँह पर रूमाल रखकर आख़िर कह ही उठी।

न परिचय, न नाम, न लेन, न देन, बुड्ढा सहसा चीख उठा—'क्यों? इस नरक-निवासी मेरे आप के स्वर्ग-कानन में घुसना तो नहीं चाहते हैं!'

ललना को जैसे साँप ने डस लिया। निस्तब्ध, निर्वाक्, सन्ना-न्न सी देखती [illegible] [illegible] रह गई! [illegible] [illegible]! [illegible] [illegible] गया!! किस ढंग से परिचय

कराकर, बातें बनाकर करुणा का अपमान कराना रामशरण चाहता था, और साथ ही खुद सुर्ख़रू बना रहना चाहता था, वह ढंग सब उथल-पुथल हो गया, बल्कि यही नहीं, एक बार मन-ही-मन वह विपद की आशंका से कांप उठा ! कहीं वह मेरा कौशल समझ न जाय !

'आपसे इनका परिचय करा दूँ ! उसने इस कटुता पर ख़ाक डालते हुए प्रसंग को प्रिय बनाने की चेष्टा की—'आप बाबू रामकिशोर........।'

'अरे मैं जानता हूँ, यह उसी क्रिस्तान राककिशोर की लौंडिया है, जिसने अपने बाप-दादों के मुँह पर ख़ूब स्याही फेरी है ।'

कहते-कहते बुड्ढे को जोर से खाँसी आ गई ।

जेब से रूमाल निकालकर रामशरण ने मुँह का पसीना पोंछा या बेलाग कहें, तो मुँह का भाव छिपाने की चेष्ठा की, यह भी कहा जा सकता है ।

और करुणा ?

करुणा तो जैसे पत्थर की मूर्ति बन गई है, न हिलती है, न डोलती है, न कुछ बोल सकती है। बस आँखों की पुतलियाँ इधर-से-उधर और उधर-से-इधर घूम रही हैं।

बुड्ढे की खाँसी थम गई, और वाक-प्रवाह पुनः प्रारंभ हुआ ।

'अरे ! तुम लोग मेरे लाल को मुझसे छीनकर मेरा सर्वनाश कराना चाहते हो ! अरे, अपने साथ ही तुम उसे भी क्रिस्तान बना दोगे ! अरे लड़की ! तू तो कुछ लाज कर ! तू हिन्दू के घर में पैदा हुई है, और इस तरह फिर रही है। अरे !

तू मेम है, तो किसी साहब को पसंद कर, मेरे भोले-भाले बेटे पर तू क्यों रीझी है! मैं तेरे हाथ जोड़ता हूँ, तू मुझ पर दया कर.......'

कहते-कहते बुड्ढा कातर होकर रो पड़ा।

बुड्ढे-बुढ़ियों की ऐसी रुलाई से इस बीसवीं सदी में पैदा हुए हमारे बहुत-से पाठक परिचित होंगे। इस रुलाई को सुनकर द्रवित होने की जगह कैसा उन्मादक क्रोध और क्षोभ उत्पन्न होता है। इसका अनुभव उन्हें होगा।

अस्तु। बुड्ढे की इस रुलाई से आप भी द्रवित न हों। यह रुलाई कलेजा फाड़कर नहीं निकली है, न इस में शरीर का सत्व चुका हुआ है, यह तो केवल अभ्यास है।

न, निष्ठुर मैं नहीं हूँ यह आपका अन्याय है! ख़ैर आपकी इच्छा! देखिए, मैं औपन्यासिक हूँ, सर्वज्ञ और मध्यस्थ हूँ। आप इन तीनों बातों गौर कीजिए, और मेरे अप्रिय कर्तव्य का ज्ञान आपको स्वयमेव हो जायगा। इससे अधिक अपनी सफाई देने की मुझे आवश्यकता नहीं।

बस, बहुत हुआ। सच यह है कि बुड्ढे का आचरण रामशरण की शिक्षा के अनुसार नहीं हुआ, न उतना कला और न व्यवस्थित, पर इतने में काम चल जायगा, बल्कि आगे चलने में कौशल खुल जायगा। रामशरण ने करुणा की मूर्ति देखकर यह समझ लिया, और श्रीहीन चेहरा बनाकर बोला—'अच्छा, हुजूर, चलें।'

हाय! हाय! जब इन दोनों ने पीठ फेरी, तो बुड्ढा जोर-जोर से छाती पीटता हुआ बोला—'अरे मेरे राम! मेरे बेटे को बचाइयो! इस बालकिशोर का बेड़ा पार करियो।

हाय ! इस मेम साहब.... ।'

बस, इससे आगे करुणा और रामशरण ने कुछ नहीं सुना ? जब उन्होंने नहीं सुना, तो हम क्यों सुनें ?

करुणा भी चुप है, और रामशरण भी। कारण चाहे भिन्न-भिन्न हों, मगर 'चुप' एक-सी है। वही सिर झुकाए चलना, वही डरते-डरते खिंचती साँस लेना, वही लंबे-लंबे डग रखना बाह्य चेष्टाएँ दोनो की बिलकुल मिलती-जुलती थी।

'अब तुमतो अपने होस्टल में जाओ ।' एक तिराहे पर पहुँच कर सहसा करुणा ने कहा—'इधर से चले जाओ।' नज़दीक पड़ेगा।'

'और तुम ? ' साहस पाकर रामशरण ने भयग्रस्त स्वर में पूछा—'तुम कहाँ जाओगी ?'

होने को तिराहा था, मगर आता-जाता कोई न था। एक तरफ़ कुछ दूर पर, कुछ बच्चे घेरे-तार का खेल खेल रहे थे। पास ही पशुओं के पानी पीने के लिये एक पक्की प्याऊ थी, और एक पीपल के बड़े पेड़ ने उस पर छाया कर रक्खी थी, इस पीपल के पेड़ पर कुछ पक्षी बैठे अपने अस्तित्व की सूचना दे रहे थे।

इन दोनो की बातें सुनने वाला और कोई भी वहाँ पर न था।

करुणा ने कहा—'मैं तो घर जाऊँगी।'

'कोठी ?'

'हाँ।'

तो फिर करुणा ने भला उसे ऐसा आदेश क्यों दिया ? उसका ऐसा तिरस्कार करने का साहस उसने कैसे और किस अधिकार पर किया ? रामशरण एक बार सिर से पैर तक

काँप उठा।

तब सहसा इधर-उधर देखकर उसने करुणा का हाथ पकड़ लिया, और कहा—'करुणा, मुझे माफ़ करो!'

करुणा हँस पड़ीं, और धीरे से हाथ छुड़ाकर बोली—'माफ़? अरे! तुमने क्या अपराध किया?'

रामशरण करुणा से, किसी से भी, लिपटकर रोना चाहता है, पर ऐसा करे कैसे? उसने नेत्रों में आँसू भरकर स्थिर दृष्टि से करुणा को ताका, और कातर स्वर में कहा—'करुणा, आज एक बात का साफ़-साफ़ जवाब मैं चाहता हूँ।'

'क्या?' रामशरण क्या पूछता है?

करुणा क्षण,भर चुप खड़ी रही, और फिर बोली—'...न, ब्याह तो मैं तो तुम से ही करूँगी!'

वाक्य उसका अधूरा-सा था, जैसे पहला हिस्सा उसने मन में ही कह लिया हो।

पर रामशरण को तो पिछले हिस्से से ही गर्ज़ है, उछलकर बोला—'सचमुच? वचन देती हो?'

'हाँ, बस, अब तुम जाओ, मैं अभी आती हूँ।'

रामशरण के मोद और हर्ष का क्या ठिकाना! लहक कर बोला—'तो चलो जरा घूम आएं। घर जाकर अभी क्या करोगी?'

बिस्तरे पर करुणा की मा अचेत-प्राय लेटी थी। सिरहाने पंखा लिए एक दासी बैठी थी, और पास ही झुके हुए रायबहादुर रामकिशोर मौजूद थे, और दाहिनी तरफ़, ज़रा हट कर फ़र्श पर एक प्रौढ़ा घूँघट निकाले बैठी थी।

नकुल ने भीतर पहुँचकर धीरे से कहा—'क्या हाल है?'

रामकिशोर ने चौंककर उनकी तरफ़ देखा। उनके नेत्र अश्रु-पूर्ण थे कहने लगे—'क्या हाल बतलाऊँ बेटा? आओ, देख लो—कुछ दिनों के दर्शन-मेले हैं। तुम भी बेटा इनके स्नेह से थोड़े-बहुत परिचित हो ही। जब तक हाथ-पैर चलते रहे तुम्हारे लिये तो भोजन सदा अपनी देख-रेख में ही बनवाती थी। याद है तुम्हें? कैसे दुलार से पंखा हाँकती-हाँकती तुम्हें खाना खिलाती थी? तुम कहते—'मा कंठ तक भर चुका है, अब गुंजाइश नहीं।' और यह तला हुआ पापड़ तुम्हारी थाली में डालकर कैसे स्नेह से तुम्हें विवश करती थीं? इनके हाथ की चटनी और रायते की प्रशंसा करते करते तो तुम थकते ही न थे! बेटा नकुल, तुम्हें देखते ही किस प्रकार खिल उठती थीं और किस प्रकार हुलसकर तुम्हारा स्वागत करती थीं, वे दृश्य संभवतः तुम भूले न होगे। देख लो, बेटा, आज उस स्नेह मूर्ति की क्या दशा है! देखो; आगे बढ़ आओ, उस प्रफुल्ल, स्वर्गीय मुख पर जैसे किसी ने स्याही फ़ेर दी है। हाय! कभी इन्होंने किसी से ईर्षा न की, कभी किसी से बुरा बोल न बोला, कभी किसी का बुरा न चाहा, फिर भी न-जाने क्यों ईश्वर ने इनकी यह दशा कर दी! हाय! कभी अपने-पराए में भेद न समझा, भंगी-चमार के बच्चों तक से सदा स्नेह-स्निग्ध स्वर में बोलीं तो ईश्वर ने उसके घर के दोनो जलते चिराग़ बुझा दिए, दोनो खिले फूल कुचल दिए! आओ बेटा,

देख लो....।'

कहकर रामकिशोर ज़रा पीछे हट गए।

नकुल आँखों में आँसू भरे आगे बढ़े, और झुककर धीरे से पुकारा—'मा, कैसी हो ?'

रोगिणी ने निर्विकार भाव से नेत्र खोल दिए, और स्थिर दृष्टि से नकुल का मुँह ताकने लगी, जैसे चेहरे पर कोई परिवर्तन लाना चाहती है, पर नहीं ला पाती, नहीं ला पाती।

नकुल ने द्रवित कंठ से पूछा—'मा, कैसी हो ?'

मा अपनी सफ़ेद आँखें खोले निरंतर उन्हें ताकती रही, मानो कहती हैं —'मेरी आँखों में पढ़ लो !'

नकुल धीरे से रोगिणी की शय्या पर एक किनारे बैठ गए, और उनका एक दुर्बल, लकड़ी-सा हाथ उठाकर धीरे-धीरे उसे दबाने लगे।

थोड़ी देर बाद रोगिणी ने पुनः आँखें खोलीं, और क्षीण कंठ से कुछ कहा।

नकुल ने कान उस तरफ़ झुकाकर कहा—'क्या कहती हो मा ?'

रुक-रुककर शब्द उनके मुँह से निकलने आरंभ हुए—'बे...... बे..... बेटा ! ......'

[illegible]

आचरण ने उन्हें क्या समझने पर विवश किया है ? करुणा के पिता के आग्रह को वह कितना अनुचित और अनधिकार-पूर्ण समझने लगे हैं ? अपने और करुणा के जीवन-सहयोग की असंभवता का किस प्रकार वह स्पष्ट आभास पा चुके हैं ?

आप ही बताइए, अब पुनः सहसा उस पढ़ी-लिखी, समझदार वयस्क लड़की के असली मनोभावों का अनुमान लगाकर भी कैसे उनके विरुद्ध उससे विवाह करने का विचार वह कर सकते हैं ?

रामकिशोर ने भी रोगिणी की बात सुन ली जब नकुल कुछ उत्तर न देकर चुप बैठे रहे, तो वह जरा ऊँचे स्वर में बोले—'बेटा नकुल ! सुनते हो ? क्या कहती हैं ?'

नकुल भयानक संकट में पड़े। क्या जवाब दें ? और बिना जवाब दिए कैसे इस प्रकरण को बदला जाय ?

रामकिशोर ने पुनः कहा—'बेटा नकुल ! सुन लिया ? कहती हैं—करुणा तुम्हारी है। मृत्यु-शय्या पर पड़ी हुई तुम्हारी मा तुम्हें यह आदेश करती है।'

नकुल के मुँह से तब भी कोई शब्द न निकल सका, और उन्होंने सिर झुका लिया।

रामकिशोर इस सिर झुकाने से कुछ और ही समझे। पास ही एक अपरिचित प्रौढ़ा बैठी थी, सिरहाने दासी खड़ी थी—उन्होंने सोचा, भला इस स्थिति में नकुल मूक-स्वीकृति के अतिरिक्त कैसे और कुछ कह सकता है ?

'अच्छा नकुल,' तब सहसा उन्हों ने कहा—'मेरे पास होकर जाना मैं ड्राइंग रूम में बैठूँगा।'

बड़ी आसानी से संकट टल गया। नकुल ने धीरे से कह

दिया—'बहुत अच्छा !'

'अच्छा, अब तुम्हें पहचाना, तुम्हीं नकुलचंद्र हो, उस दिन बदहवासी में ठीक न देख सकी।' रामकिशोर के जाते ही उस फर्श पर बैठी हुई प्रौढ़ा ने घूँघट उलट कर हँसते हुए कहा।

पचीस वर्ष के नकुलचंद्र प्रौढ़ा का यह व्यापार देखकर कुछ लजा गए, और नेत्र झुकाकर बोले—'जी हाँ !'

'मुझे पहचानते हो ? मैं कुमारी की मा हूँ ! जिससे उस दिन कुमारी का पता पूछा था।' प्रौढ़ा ने कहा।

'ओह ! याद आ गया ! ठीक है ! इन्हीं ने तो उस दिन द्वार खोलकर कुमारी के निमंत्रण में जाने की बात कही थी।

नकुल के उत्तर की बाट देखे बिना ही दयावती कहती रहीं—'कुमारी तुम्हारी बड़ी प्रशंसा करती थी। उस दिन करुणा के निमंत्रण में आई थी न, कहती थी, उसी दिन तुमसे उसकी भेंट हुई। (फिर कुछ ठहर कर) बल्कि हाँ, उसने तो नहीं कहा करुणा ने कहा था। फिर करुणा के चले आने पर उसने तुम्हारा परिचय भी दिया था।...तुम भी तो लेख लिखते हो बेटा !'

जाने आत्म-समर्पण कर दे, अथवा अपनी कमज़ोरी मान ले, तो उसके प्रति हमारे मन में सहसा घोर सहानुभूति का उद्रेक हो आता है, और उस पर प्रौढ़ा के इस स्वर में तो, मातृ-स्नेह से वंचित नकुल को, उसी पूर्व-परिचित वात्सल्य का रूप दिखाई दिया। अतएव उनकी उस अश्रद्धा का स्थान सहसा भक्ति और गादगद्य ने ले लिया।

और, तब दयावती की बातों की ओर भी उनका ध्यान आकृष्ट हुआ।

कुमारी ने प्रशंसा की! कुमारी ने प्रशंसा की!! कुमारी ने प्रशंसा की!!! लेख पढ़कर सुनाए! लेख पढ़कर.......

ये दो बातें कितनी बार उनके मन में ध्वनित-प्रति-ध्वनित हुई, इसकी ठीक-ठीक संख्या हम क्या, कदाचित् वह स्वयं भी न बता सकें।

दयावती ने आगे क्या-क्या कहा, वह सब सुनने की न हमें फ़ुर्सत मिली, न नकुलको। हाँ, उनका यह वाक्य अवश्य हमने और उन्होंने ग्रहण किया—'तुम तो सचमुच बहुत ही सुशील लड़के हो बेटा!'

इस नकुल में न-जाने क्या है कि देखते ही सबको अपनी तरफ़ खींचता है! केवल करुणा का नहीं। जी हाँ, केवल करुणा को नहीं! इस नकुल के व्यक्तित्व में न-जाने क्या विशेषता छिपी है कि प्रत्येक व्यक्ति मिलते ही उसे भाप लेता है! केवल करुणा नहीं! जी हाँ, केवल करुणा नहीं!! यह नकुल न-जाने कैसा अलौकिक प्राणी है कि प्रत्येक व्यक्ति मिनट-भर बात करते ही उसे पहचान लेता है! केवल करुणा नहीं! जी हाँ, केवल करुणा नहीं!!

करुणा ! सहसा करुणा ने कमरे में पदार्पण किया।

चेहरा उसका सुता हुआ जरूर है, मगर दृढ़ है। आँखें उसकी डबडबाई हुई जरूर हैं, मगर स्थिर है। पैर उसके लड़खड़ाते जरूर हैं, मगर सतर हैं।

आकर वह सीधी लकीर की तरह नकुल के सम्मुख खड़ी हो गई, और बिना कुछ हक-दककिए बोली—'प्रोफेसर साहब ! एक बात सुनिए।

नकुल तो उसी की तरफ देख रहे थे, अब और अधिक आकृष्ट हो गए।

'देखिए' जैसे कोई पत्थर की मूर्ति खड़ी बोल रही हो, इस प्रकार करुणा बोली—'रामशरण को क्षमा कर दीजिए।'

यह सहसा करुणा को आज कैसा हो गया ? वह उत्फुल्ल वह उन्मुक्त चञ्चलता, वह बचपन, सब सहसा कहाँ उड़ गए ? हे ईश्वर यह कैसा नाटकीय परिवर्तन !!

नकुल ने नेत्र विस्मय-विस्फारित कर कहा—'क्या ? कह रही हैं आप ?

करुणा पागल तो नहीं हो गई है ?

न, करुणा पागल नहीं हुई है; कुछ-न-कुछ बात अवश्य है !

नकुल बोले—'क्या धोका दिया है ?'

'मा ने आपको बुलाया नहीं था, रामशरण ने आपको अलग करने और अपने घर न जाने देने के लिए झूठ बोलकर आपको इधर भेज दिया। मा ने आपको नहीं बुलाया था।'

नकुल को अभी तक इसका संदेह भी न हुआ था ! जरूर मा ने बुलाया होगा, तभी तो आते ही वह बात कही थी।

और न भी बुलाया तो बात साधारण है ! और रामशरण का अपराध भी साधारण है, करुणा उसके लिये इतनी व्यग्र क्यों है ?

करुणा से पूछा, तो उसने इन प्रश्नों का उत्तर न दिया, और कहा—'मैं हाथ जोड़ती हूँ, रामशरण को क्षमा कर दीजिए। कहिए, कर दिया।'

हारकर नकुल ने उसी तरह कह दिया ।

तब करुणा, उसी तरह, सीधी सतर-सी कमरे से बाहर निकल गई।

(१७)

'आओ, बेटा, आओ।'

'न-न, मैं बैठा हूँ, आप पढ़ लीजिए !'

'ओह ! अब क्या पढ़ूँगा !' रामकिशोर ने पुस्तक बंद करते हुए कहा—'पढ़ने के दिन गए बेटा ! अब तो ये काली लकीरें साँप-सपोले-सी लगती हैं। एक वह समय था कि हजार-हजार पेज के नूनी पुस्तक आठ घंटे में पी जाता था, एक यह है कि आधा पेज पढ़कर ही सिर चकराने लगता है। समय ही तो है ! ....वहाँ इतनी दूर क्यों बैठे हो ? आओ इधर आ जाओ;

मेरे पास आकर बैठो। लो, आओ इस कुर्सी पर........।'

कहकर रामकिशोर अपने हाथ से एक बोझिल कुर्सी सरकाने का प्रयत्न करने लगे।

नकुल जल्दी से उठे, और उस निर्दिष्ट कुर्सी पर, रामकिशोर बिल्कुल पास बैठ गए।

'बेटा नकुल, जानते हो, मैंने तुम्हें क्यों बुलाया है?'

,जी नहीं।' नकुल ने कुछ अधूरी-सी कल्पना की।

'देखो बेटा,' रामकिशोर ने अपनी कुर्सी का रुख जरा फिराकर कहा—'करुणा की मा तो बचेगी नहीं। अब मुझे भी इसका निश्चय हो चुका है (कहते-कहते आँखों में आँसू भर आए) उनकी एक अभिलाषा है, वह चाहती हैं, करुणा का विवाह देखलें। इस समय जब मानो मुर्दा घर में पड़ा हो, एक आँख हँसकर एक आँख रोकर बेटी का ब्याह करने में मुझे जितना कष्ट होगा, मैं ही जानता हूँ पर उनकी इस समय की कोई भी अभिलासा पूर्ण करने के लिये मैं सभी प्रकार का त्याग करने को प्रस्तुत हूँ। बस; यही कहने को तुम्हें बुलाया है।'

नकुल इस संकट से छूटने का कोई उपाय अभी तक निश्चय न कर पाए थे क्या जवाब दें कैसे इन्कार करें?

दम साधे चुप....।

रायबहादुर रामकिशोर फिर बोले—'देखो बेटा, बार-बार वह बात कहते संकोच तो होता है, पर कहे बिना बनता नहीं। सुनो बेटी करुणा या उसका पति ही मेरा उत्तराधिकारी होगा। बल्कि मैं यह कहूँ कि मन में तुम्हें ही अपना उत्तराधिकारी निश्चित कर चुका हूँ। खैर, सुनो बेटा, करुणा के साथ-साथ अपना

सर्वस्व भी तुम्हें सौंप कर मैं सदा के लिये तुम लोगों से विदा हो जाऊँगा। करुणा की मा अधिक दिन न रहेगी। मैं भी इस रूप में अब न रहूँगा। लोग मेरी ऐसी मनोवृत्ति की निंदा करते हैं, करें। मैं उस विषय में अपनी कोई कैफ़ियत देने को तैयार नहीं हूँ। केशव और श्याम (वकील साहब के दोनो मृत पुत्र) के मर जाने पर, बेटा नकुल, एक बार सारा संसार मुझे अंधकारमय दिखाई देने लगा था। सारी आशाएँ, मंसूबे, सारे ऊँचे-ऊँचे क़िले भयानक क्रूरता पूर्वक छिन्न-भिन्न कर दिए गए। सहसा संसार का प्रत्येक पदार्थ सार-हीन और आधार-हीन जान पड़ा। ऐसा भान हुआ, मानो शीघ्र ही तड़प-तड़पकर मर जाऊँगा' मरा नहीं, तो पागल तो जरूर हो जाऊँगा पागल न हुआ, तो सारा संसार छोड़-छाड़ कर साधु हो जाना तो अनिवार्य ही है। पर मेरे नकुल, कुछ न हुआ, न वह' न वह, न यह।'

नकुल पूर्ण सहानुभूति-पूर्वक रामकिशोर का वक्तव्य सुन रहे थे।

'मगर यह सब हुआ क्योंकर ? इसलिये कि शोक के भयंकर आघात में एक बार जिस संसार में प्रत्येक वस्तु आधार हीन-सी नजर आई थी, उसी में सहसा दो आधार मुझे दिखाई पड़ गए। एक करुणा और दूसरी उसकी मा। करुणा तो खैर उस समय बच्ची ही थी, मगर उसकी मा ने खुद गिरकर भी मुझे सम्हाल लिया। यानि उस बुद्धिमती, पतिव्रता स्त्री ने अपने ऊपर सारे शोक का भार लेकर मुझे हल्का कर दिया, कहूँ, मुझे जिलाकर अपने मरने की तैयारी करदी ! कहो बेटा नकुल, तुम तो सुशिक्षित हो, भला सोचो तो, यह कैसा महान् त्याग है !'

नकुल ने स्वीकृति-सूचक गर्दन हिलाई।

'बस, मसल मशहूर है कि बेटी पराए घर की;' अतः उसे अब अपना आधार मानना असंगत है। बस, मेरा एक-मात्र आधार। मेरी स्त्री, जब इस लोक में नहीं रहेगी, तो बताओ, जहाँ उसके जीवन का अधिकांश बीता, और जहाँ के एक-एक परमाणु में उसकी याद लिपटी हुई है, कैसे मैं उसी वातावरण में उसके लुप्त हो जाने पर, एक क्षण भी ठहर सकूँगा ?'

रामकिशोर अब चुप हुए, और रूमाल निकालकर नेत्र पोंछने लगे।

नकुल ने व्यर्थ शिष्टाचार की बात न कहकर सहानु-भूति प्रकट करते हुए दृढ़ता-पूर्वक कहा—'बेशक, बाबुजी दुःख के साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि मा के बचने की कोई आशा नहीं है। परंतु.......आप.......हाँ, आपको मानसिक अघात पहुँचेगा, या पहुँच रहा है, मैं उसका अनुमान कर सकता हूँ इस समय उनका विच्छेद.......सचमुच बड़ा भयानक और कष्टकरहै। परंतु मेरी सम्मति में तो आपको एकदम संसार से विरक्त न हो जाना चाहिए। आपके पास धन है,स मय है। आप चाहें, तो इन दोनो वस्तुओं का बहुत ही सुंदर उप-योग हो सकता है। यदि आप आज्ञा दें तो मैं आपको बता सकता हूँ।'

रामकिशोर आशा और उत्सुकता से अधीर होकर बोले—'कहो, कहो....... ।'

'मेरी समझ में,' नकुल ने सिर झुकाकर गंभीर स्वर में कहा—'किसी एक व्यक्ति को यह विशाल संपत्ति सौंप देने से उसका दुरुपयोग होने की संभावना है। मेरा वर्षों का कॉलेज-स्कूलों का अनुभव यही है कि आधुनिक शिक्षा-प्रणाली अत्यंत दूषित औरग़लत है। मैं तो वर्षों से एक आदर्श और अभूतपूर्व स्कूल-

कॉलेज का स्वप्न देख रहा हूँ। उसकी स्कीम मेरे मस्तिष्क में घूम रही है। मातृ-भाषा को प्राधान्य मिले, स्वास्थ्य, ब्रह्मचर्य, देश-भक्ति इत्यादि पर लेक्चरों का प्रबंध हो, नियमित व्यायाम प्रत्येक विद्यार्थी के लिये अनिवार्य हो, इत्यादि। बस, मैं तो यही चाहता हूँ कि आप अपने धन को इसमहान् शुभ कर्म की पूर्ति में लगाएँ, और अपनी सेवाएँ और अपना तन-मन भी इसी संस्था को अर्पित कर दें, जिससे यश की बात तो अलग रही देश और समाज की एक बड़ी भारी नैतिक सेवा आप करेंगे, और इस प्रकार आपका विदग्ध हृदय भी बहुत कुछ शांति-लाभ करेगा।'

नकुलचुप हुए। रामकिशोर के मन की अवस्था कुछ पूछिए मत। ओह! कैसा महान् त्यागी! कैसा उच्च व्यक्तित्व! कैसी सदभिलाषा! कैसे सुंदर विचार!

नकुल की इस बात ने उनकी नजरों में नकुल को कितना ऊँचा उठा दिया। स्नेह-स्निग्ध नेत्रों से श्रद्धा और भक्ति का स्रोत फूट पड़ा, और एक बार उनकी इच्छा हुई, नकुल के पैरों पर गिर पड़ें।

कइ मिनट तक उनके मुँह से बात न निकली। वह टकटकी बाँध कर नकुल को सिर पैर तक निहारते रहे।

ओह! इस सीधे-सादे, मोटे-झोटे, गँवार वेष में कैसा महान् व्यक्तित्व छिपा हुआ है!

रायबहादुर रामकिशोर की इस असाधारण चुप्पी पर एक बार नकुल भी चकित हुए, और उन्होंने कुछ शर्माकर, खिसियाकर कहा—'कहिए, मेरी बात आपको कुछ....आपने कुछ ध्यान-पूर्वक सुनी?'

'मेरे अजीज!' रामकिशोर ने स्नेह, वात्सल्य और श्रद्धा के मिश्रित गादगद्य में विभोर होकर कहा—'तुम्हारी बात

सचमुच तुम्हारे ही योग्य थी! मैंने ख़ूब ग़ौर के साथ उसे सुना है, और मैं कैसे तुमसे कहूँ, उसने मेरे हृदय में तुम्हारा आसन कितना ऊचा कर दिया है! ओह! मेरे नकुल! तुम महापुरुष हो, और छोटे होते हुए भी तुम्हारे पैर छूने की मेरी इच्छा होती है!'

संकोच से सिमटकर नकुल ने सिर ज़रा और नीचे कर लिया, और लज्जा से लाल होकर उलझे हुए स्वर में केवल कहा-'खैर.......ख़ैर.......जो कुछ हो.......।'

फिर क्षण-भर बाद ही कहा—'हाँ तो मेरी स्कीम और सम्मति के संबंध में आपका क्या मंतव्य है?'

रायबहादुर रामकिशोर ने कहा—'तुम्हारी भावनाएँ बहुत ऊची है,बेटा! मैं पुनः तुम्हारा अभिनंदन करता हूँ। सम्मति बहुत ही विचारणीय और गंभीर है, पर मैं मोटी-सी बात तुमसे कहता हूँ। वह यह कि मुझसे इस संबंध में कुछ कहने की आवश्यकता ही क्या है। मै तो एक बार कह चुका, और अब फिर कहता हूँ कि मैने तो तुम्हें ही अपना पूर्ण उत्तराधिकारी बना लिया है। अब तुम्हें अधिकार होगा कि तुम अपनी वस्तु का किसी प्रकार उपयोग करो!'

अपनी स्कीम के संबंध में रामकिशोर का मंतव्य जानने के लिये नकुल का जो सिर ऊपर उठा था, वह सहसा ढलककर नीचे झुक गया, और न मालूम किस सोच-समुद्र में डूबकर उनके मुख की चेष्टा ऐसी अद्भुत, ऐसी विकृत, ऐसी दयानीय ऐसी निष्प्रभा बन गई कि मैं क्या शायद संसार का सर्वोच्च चित्रकार भी उसकी नक़ल उतार कर नहीं बता सकता।

नकुल इस समय कैसे भयानक संघर्ष में पड़े हुए हैं!

दुनियादार रामकिशोर का माथा ठनका। उस व्याह की बात

सुनने की पूर्व परिचित लज्जा में और इस चेहरे के हठात् काले, स्याहपड़ जाने में कितना अंतर है! क्या उनके अनुभवी नेत्रों से छिप सकता था? क्षण-भर को वह अवाक् हो गए।

पर वह तो इसे वैसी पूर्व-परिचित लज्जा का ही कोई नया रूप समझेंगे, वैसा ही समझना उनके अनुकूल है, और वैसा ही समझने से उन्हें लाभ हो सकता है। तो उन्होंने वही समझकर कहा—'न बेटा, लज्जा करना तुम्हें शोभा नहीं देता। तुम बहुत समझदार लड़के हो और, लज्जा करने की कोई बात नहीं है। बताओ न, इसमें अड़चन क्या है? स्कीम तुम्हारे पास तैयार, साधन तुम्हें प्राप्त हो ही जायगा! तब उसे कार्य-रूप में परिणत करते क्या देर लगती है? बोलो साफ़-साफ़ कहो।

बड़ी कठिनता से नकुल के मुँह से निकला—'जी, ! उसमें बड़ी अड़चन है........।'

'अच्छा! अड़चन? क्या अड़चन?'

'जी हाँ बड़ी भारी अड़चन है।'

कहकर नकुल अन्यमनस्क भाव से छत की ओर ताकने लगे।

'कैसी अड़चन बेटा, बताओ तो सही!' ओह! बेचारे वृद्ध के स्वर में कैसी भीषण कातरता और अधीरता थी।

नकुल ने हारकर कहा—'क्या बताऊँ?....'

'बताओ, साफ़-साफ़ बताओ'

तब नकुल ने भयानक साहस से काम लेकर कह डाला—'आपकी कन्या का पाणिग्रहण करना मेरे लिये संभव नहीं!'

रामकिशोर कुर्सी से कई इंच ऊँचे उछल पड़े, और मुँह से उनके हठात् 'अरे! क्या .... ?' निकल पड़ा।

फिर कुछ स्वस्थ होकर बोले—'कहो बेटा, यह पुनः क्यों विचार बदल गया ?'

'बात यह है,' नकुल ने यथासाध्य दृढ़ होकर कहना शुरू किया—'विचार बदल देने का आरोप मुझ पर नहीं किया जा सकता। सच पूछिए, तो मुझे कोई भी ऐसा क्षण स्मरण नहीं पड़ता, जब करुणा के विषय में मेरा वैसा विचार हुआ हो! बेशक,आपकी इच्छा का आभास पाकर मेरा मन उस निर्दिष्ट केंद्र के चारों तरफ कभी-कभी घूम आता था, पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि कभी भी मैं उस केंद्र तक, उस लक्ष्य तक, पहुँचने का साहस न कर सका। मैंने चेष्टा करके देखा, तो वहाँ तक पहुँचना बार-बार अपने लिये असंभव पाया, और मुझे यह स्वीकार करने में कुछ भी आपत्ति नहीं कि अपना स्पष्ट मत न देकर मैंने आज तक आपको एक व्यर्थ की मृग-तृष्णा, एक भयानक मानसिक धोखे में रक्खा, इस अपनी कमजोरी के लिये मैं अपने को कदापि क्षमा न करूँगा! आप.... !'

रामकिशोर के धैर्य का बाँध टूट गया, आगे झुककर उन्होंने हठात् नकुल के दोनो हाथ थाम लिए, आँसू बहाते-बहाते कहना शुरू किया—'प्यारे नकुल! अजीज नकुल! यह तुम क्या कह रहे हो! देखो, इस वृद्ध पर दया करो। इसके बने-बनाए क़िलों को चकनाचूर न करो। इसके व्यथित हृदय पर यह असह्य, भयंकर आघात न पहुँचाओ! देखो, मेरी इस टोपी की लाज रक्खो.... ।'

कहते-कहते रामकिशोर सिर से टोपी उतारने लगे।

नकुल ने उनका हाथ पकड़ लिया, और एक बार द्रवित कंठ से कहा—'न, ऐसा नहीं।' और, तब उन्होंने दोनो हाथों से मुँह छिपा लिया!

होश संभालने के बाद आज नकुल शायद पहलेपहल रोए हैं।

सहसा कमरे के द्वार पर कुछ आहट हुई, और....दोनो ने चौंककर देखा।

करुणा.... !

(१८)

करुणा ने क्षण-भर द्वार पर ठिठककर दोनो को पूर्ण दर्शन दिया, और तब उसी निर्विकार भाव से, सीधी लकीर की तरह एक-एक पग चलती, आगे बढ़ी।

चेहरा सफ़ेद आग-सा है, आँखों में हलकी ललाई है, पलक भीगे- से है, केश कुछ अस्त-व्यस्त, और चेष्टा अद्भुत और गहन-गंभीर बल्कि कहें, विषाद-पूर्ण है।

नकुल आँखें फ़ाड़कर उसे निहारने लगे, और रामकिशोर तो उछल पड़े। सोचने लगे, इन दोनो को अकेला छोड़कर चले जायँ या बैठे रहें? न, लड़की सुबह भी कुछ न कर सकी। उन्हें रहना चाहिए।

अग्राह्य वस्तु को ग्राह्य करने के लिये वृद्ध कैसा व्यग्र हो उठा है! मान, अपमान, औचित्य, विवेक—सबको—लात मारने को तैयार हैं!

करुणा आकर चुपचाप एक कुर्सी पर बैठ गई!

वृद्ध रामकिशोर ने कोमल स्वर में कहा—'कहो बेटी, कहाँ से आती हो?'

करुणा ने मुँह से कुछ न कहकर केवल सिर हिला दिया।

कुछ क्षण तक सब चुप रहे। कमरे में सन्नाटा छागया। बात चलनी ज़रूरी चाहिए। बड़ी भारी असभ्यता हो जाएगी?

पर चले कैसे ?

बेचारे रामकिशोर थे ग़र्ज़मंद, आख़िर उन्हें ही बोलना पड़ा। 'हाँ, करुणा, तुम्हारा सार्टिफ़िकेट मिल गया क्या ?' उन्होंने कहा।

करुणा ने वही पहले-जैसा स्वीकृति-सूचक सिर हिला दिया।

तब रामकिशोर नकुल की तरफ़ देखकर बोले—'चलो न, नकुल इस बार पहाड़ पर ही हो आवें।'

नकुल तो सारा संबंध, सार प्रलोभन त्याग चुका है। वकील साहब से कह भी चुका है। फिर उन्होंने क्यों सहसा ऐसा अनुरोध किया ? और अब, करुणा के आगे, किस प्रकार सहसा उसे अस्वीकार करें ? बेचारा फिर धर्म-संकट में उलझकर चुप रह गया।

करुणा के श्री-हत नेत्रों में, पिता की बात पर, सहसा चमक दिखाई दी थी, और उसने क्षण भर आशा-पूर्ण दृष्टि से नकुल की ओर देखा।

यह दृष्टि रामकिशोर की आँखों से छिपी न रही, और कन्या की वृत्तियों से परिचित वह वृद्ध उसका यह अनुराग देखकर एक बार बहुत हर्षित हुआ। अभी तक उसे जो यह विश्वास था किंचित् दबाव डालकर उसने नकुल को ब्याह करने को राज़ी किया है, वह सहसा इस समय दूर हो गया।

अब वृद्ध अपनी पूरी ताक़त आज़माएगा। कहा—'हाँ, नकुल, अब कॉलेज तो बंद हो ही रहा है, क्यों नहीं चलते ?'

सहसा नकुल को एक युक्ति सूझ गई। बोले—'इस अवस्था में कैसे जाया जा सकता है........'

'कैसे ?—क्यों ?'

'जब कि मा भयानक रोग-ग्रस्त है !'

रामकिशोर क्षण-भर ठहरे, और फिर कहा —'ओह भाई, यह तो राज़-रोग है ! चलो, कुछ दिन रहकर चले आएँगे।'

नकुल ने रामकिशोर के त्याग की कल्पना की ,और एक बार वह किसी अभूत-पूर्व गहन विचार में पड गए।

रामकिशोर समझे, बाज़ी मार ली। बोले—'हाँ तो बोलो, की ज़ाय तैयारी ?'

नकुल चौंककर बोले—'तैयारी ? जी नहीं, मैं नहीं जा सकूँगा !' कहते-कहते उन्होंने सिर झुका लिया। एक बीभत्स धिक्कार-भाव से उनका हृदय भर उठा। हाय ! आज कैसी कठोरता प्रदर्शन उन्हें करना पड़ रहा है !

इस इनकार ने रामकिशो को निराश कर दिया। पर अपनी करनी में कसर न छोड़ेंगे ! सोचकर कहने लगे—'क्यों बेटा, अड़चन क्या है ? महिने-पंद्रह दिन में लौट आएगे।'

नकुल के पास केवल वही एक बहाना था। बोले—'माता जी....उन्हें इस अवस्था में छोड़ना चाहिए !'

रामकिशोर छूटते ही बोले—'तो फिर उन्हें भी साथ ही ले चलेंगे !'

नकुल कुछ उत्तर न दे सके। कुछ टूटा-फूटा देते भी, तो उन्हें अवकाश न मिला। हठात् करुणा चिल्ला उठी—'पिताजी आप क्यों खुशामद करते हैं ?'

अब कोनो ने उसकी तरफ़ देखा। नेत्र रक्त-वर्ण हो रहे थे, माथे पर पसीना चुचुआ रहा था, शरीर कॉप रहा था।

रामकिशोर ने चौंककर उसकी यह मूर्ति देखी, और कोमल

स्वर में पूछा—'क्या है बेटी ?'

ओह ! करुणा उत्तेजित होकर कैसा अनर्थ कर बैठी !

पलक मारते वह अपनी भूल समझ गई, और क्षण-भर में अत्यंत शांत होकर उसने पिता से कहा—'आप जरा-सी देर के लिये यहाँ से जा नहीं सकते हैं क्या ?'

वाह ! कैसा अद्भुत प्रस्ताव ! पिता से जाने का अनुरोध ! और, संभाव्त पति के साथ एकांत में रहने की इच्छा का प्रदर्शन !

रामकिशोर ने अवाक् होकर एक बार कन्या के गहन-गंभीर मुख पर दृष्टि-पात किया, और बिना कुछ बोले, चुप चाप उठकर कमरे से बाहर हो गए।

'क्यों भला,' रामकिशोर जब आँखों से ओझल हो गए, तो करुणा ने आगे झुककर कहा—'प्रोफेसर साहब, आप कल्पना कर सकते हैं, मैंने पिताजी से ऐसा अनुरोध क्यों किया ?'

नकुल ने नेत्रों में अचरज और उदासीनता भरकर बहुत धीरे-से सिर हिलाया, और कहा— 'न, !'

'इसलिये कि मैं आपको एक सूचना दे दूँ।'

नकुल ने अपनी चेष्टा से क्या ? का भाव प्रदर्शित किया, और आगे झुक गए।

'.......जो शायद आपके लिये अत्यंत हर्ष कर होगी।'

नकुल के चेहरे से वह 'क्या ?' का भाव अभी तक नहीं मिटा था।

'बात यह है, मैं कदापि आपसे विवाह न करूँगी।'

करुणा अपनी इस बात के उत्तर में न-जाने क्या-क्या

कल्पना करके आई थी। वे कल्पनाएँ निर्मूल सिद्ध हुईं। नकुल के नेत्रों में जरा-सी चमक तो बेशक दिखाई दी, पर मुँह से उन्होंने अत्यंत साधारण भाव से, केवल यही कहा—'बहुत अच्छा।'

जी हाँ, चेहरे का भाव उनका बिलकुल अपरिवर्तित रहा।

करुणा तो उनका यह गंभीर भाव सहन नहीं कर सकती। वह तो उनको आश्चर्य से उछलते या हर्ष से हँसते देखना चाहती है, और फिर एक बात कहकर उनका आश्चर्य, हर्ष संतोष सहसा नष्ट करने का आनंद लूटना चाहती है। चुभते हुए ताने के स्वर में बोली—'कहिए, मेरी बात सुनकर आपको कितना हर्ष हुआ है ?'

नकुल ने उसी निर्विकार-भाव से सिर हिलाकर कहा—जरा भी नहीं।'

'जरा भी नहीं ?' करुणा बोली—'और दुःख ?'

'दुःख ? दुःख भी नहीं।'

'तो फिर कुछ भी नहीं ?'

'हाँ, हुआ है, थोड़ा संतोष।'

'यह संतोष ही क्यों ?'

नकुल ने इस प्रश्न का उत्तर देने में थोड़ा आगा-पीछा किया। शायद यह सोच रहे थे कि वह बात कहें, या न कहें। अथवा यह कि किस तरह कहें।

करुणा ने दूसरी बार वह प्रश्न नहीं किया, और स्थिर दृष्टि से नकुल का मुख ताकती रही। मानो अभी तक उत्तर की प्रतीक्षा कर रही है।

तब नकुल को उत्तर देना ही पड़ा।

'मेरी एक भ्रांति दूर हो गई !' उन्होंने कहा।

'क्या ?',

:अगर आप न कहतीं , तो.......मैं समझता, मेरे निश्चय न आपको निराश किया।'

करुणा ने क्षण-भर चुप रहकर नकुल की बात समझी, और सिर हिलाकर ओंठ काटा, और सहसा उस के मुह से निकल पड़ा—'हूँ ! यह........'

तब वह सहसा चुप हो गई, और पूरे एक मिनट चुप रह कर बोली—'अच्छा, आप सच कहते हैं हर्ष नहीं हुआ ?'

'न, हर्ष क्यों होता ?'

'बताऊँ, क्यों होता ?'

'हाँ ।'

'कुमारी से ब्याह........'

हाय-हाय ! सारा आनंद ही किरकिरा हो गया। नकुल कैसे संकट में पड़ जाते ! उनकी विकृत चेष्टा देखकर करुणा को कितना आनंद होता ! हाय ! वह सब धूल में मिल गया !

कैसे ?

हठात् द्वार पर किसी काप पद-शब्द सुन पड़ा। दोनों ने सिर उठाकर देखा—कुमारी की मा........!

दयावती क्षण-भर स्तब्ध-सी द्वार पर खड़ी रही ! न-जाने क्या हुआ ? फिर सहसा हँसकर उसने कहा—'हाँ, बेटा, मैं जा रही हूँ।'

नकुल ने कुर्सी से खड़े होकर कहा—'अच्छा। आइए !'

'न, अब जाती हूँ। कभी आओगे ?'

'देखिए।' कहकर नकुल ने एक बार करुणा की ओर देखा। हाय! उसकी बात किस जोर से खटकाती हुई उनके मस्तिष्क में घूम रही है।

'क्या बताऊँ, बेटा! तुम गए, और मैं वहाँ न रही। अच्छा तो, अब ज़रूर आना, और जल्दी ही आना!'

कहकर दयावती जल्दी से जाने को प्रस्तुत हुई।

कहें, वर्तमान वाताकरण की भयानक अशांति और उद्विग्नता का कुछ अस्पष्ट आभास उसने पा लिया।

सहसा करुणा ने तीव्र स्वर में कहा—'हाँ-हाँ, घबराओ नहीं बहुत जल्दी ही आएँगे, और स्थायी........'

दयावती ने बीच में कहा—'और हाँ बेटी, तुम भी आना अब तो परीक्षा भी हो चुकी!'

करुणा के हृदय में तो प्रचंड ज्वाला धधक रही है। वह तो दयावती के इस स्नेह-अनुरोध में भी व्यंग्य पा रही है। क्यों न इस व्यंग्य का मुँह-तोड़ उत्तर वह दे? बोली—'मुझे बुलाकर क्या लेना है? इन्हें ही बुलाओ।'

दयावती ने हँसकर कहा—'इनमें-तुझमें कुछ भेद है री पगली? अब तो पहले यह, फिर तू! छिः! इतनी बड़ी हुई और बचपन नहीं गया! बेटा नकुल! मेरी करुणा बड़ी पागल है, इसे आदमी बनाना तुम्हारा ही काम है!'

हाय! बेचारी दयावती यथार्थ की कल्पना कैसे करे? और ठंडे पानी का छींटा लगकर गरम तवा जिस प्रकार क्रोध से चिड़चिड़ा उठता है, वही दशा इस समय करुणा की हुई। हाय! इस स्नेह के बदले में उसने देखिए, क्या कह डाला बोली—'हाँ तुम्हारी कुमारी पंडिता सही, मैं तो पागल ही

नकुल का सिर ऊपर न उठेगा, न उठेगा।

तब उसनें फिर कहना शुरू किया—'मैं पास के कमरे में बैठी हुई तुम्हारी सब बातें सुन रही थी। तुमनें स्वयं अपनी कमज़ोरी को माना है। अपनी बात मैं छोड़ दूं, तो भी पिता जी को तुमने अवश्य भ्रांति में रक्खा है। समझे? और अब उन्हें इस प्रकार साफ़ जवाब देकर तुमने ऐसा भयानक अपराध.......।'

'ओह! असभ्य!' कहकर नकुल ने दोनों हाथों से अपना मुंह ढाँप लिया, और रुंधे कंठ से कहा—,हाँ, करुणा, यह बड़ा भयानक अपराध है। मं इसके लिये कभी अपने आपको क्षमा न करूंगा।.......अच्छा, तुम्हीं मेरे लिये कोई दंड तजवीज़ कर दो।'

'मैं?'

'हाँ।'

'मैं?'

'हाँ'

'मेरा दंड स्वीकार करोगे?'

'करूंगा करुणा, अवस्य करूंगा।'

तब करुणा चुप होकर कुछ सोचने लगीं।

पूरे दो मिनट बीत गए। करुणा का मुख क्रमशः रक्त-वर्ण हो उठा, जैसे कोशिश करके उसने क्रोध को बुलाया है! कहीं ज़रा-सी रियायत, ज़रा-सी उदारता, ज़रा-सी दया वह न कर बैठे!!

नकुल ने चेहरे पर से हाथ अभी तक न हटाए थे। हाँ,

ज़रा झुक ज़रूर गए थे। उसी अवस्था में करुणा की आवाज सुनाई दी—'तो सुनो अपना दंड !'

नकुल सुनने लगे।

'भविष्य में कभी कुमारी के घर जाने का साहस न करना। व्यर्थ उस बेचारी का सर्व-नाश हो जायगा !'

नकुल ने सहसा मुँह पर से हाथ हटा लिये, क्षण-भर करुणा की जलती हुई आँखों में न-जाने क्या पढ़ते रहे, और तब खड़े होकर बोले—स्वीकार है।'

करुणा ने बैठे-बैठे ही पूछा—'तो न जाओगे ?'

नकुल बिना उसकी ओर देखे हुए ही बोले—'प्रतीज्ञा करता हूँ, न जाऊंगा। सचमुच पिताजी की सेवा वह भी न कर सकेगी

'मानते हो न ?'

नकुल जवाब दिए बिना ही कमरे से बाहर हो गए।

(१६)

एक महिने बाद की बात है। कुमारी के घर करुणा का आना-जाना बराबर जारी है। आज भी आई है।

अब वह कुमारी से उतना ललककर नहीं मिलती, उसके चेहरे में कुछ ढूँढ़ने की चेष्टा करती है। और कुमारी के चेहरे पर ढूँढ़ने लायक कोई चीज़—मालूम होता है—है भी अवश्य क्योंकि अब उस पर हर वक्त एक अद्भुत विषाद की रेखा दिखाई देती है।

आते ही करुणा—हाँ, दबे-पांव—सोने की कोठरी की तरफ़ चली। मा जमना नहाने गई थीं।

दर्वाज़े पर ठिठकर करुणा ने भीतर झांका। क्या देखती है कि कुमारी एक पूरे बिस्तरे का तकिया बनाए चारपाई पर

महोदय इस लेख के लेखक।

यह करुणा क्या पूछ रही है? कैसे पूछ रही है? कैसा वेढ़ब तरीक़ा है? ओह! नकटी मेरा मजाक उड़ा रही है! हाँ, क्यों नहीं? उसे उड़ाना ही चाहिए!

पर, यह समझकर भी अपनी कमजोरी प्रगट न होने देगी। छिः ऐसी स्वार्थपरता वह कर सकती है? हाँ करुणा—करुणा उसकी प्यारी सखी, बहन से ज्यादा प्यारी—प्यारी—प्यारी!—

उससे प्रतिस्पर्द्धा करना या ईर्ष्या करना, या छल-कपट....ओह क्या यह उसे शोभा देता है! वह अबोध, स्नेह-पूर्ण सखी, जो सदा उसकी भक्त बनकर रही, सदा उसके आदेश पर चली, सदा उससे डरी, सदा जिसने उसके लिये त्याग किया, सदा जिसने उसका सम्मान किया.......सहसा कुमारी को वह धोती वाली बात याद आगई........ओह! उसके लिये क्या वह अपने मन पर क़ाबू रखकर यह त्याग न कर सकेगी?

करेगी! और जरूर करेगी!

तब उसने हँसकर कहा—'अरे नकटी! इस वक्त भला उन्हें मेरेपास आने की फ़ुर्सत कहाँ?'

करुणा के नेत्रों में कुटिलता की भयानक चमक दिखाई दी कहने लगी—'तो नहीं आते?—कब से नहीं आते?'

'कब से? यह करुणा क्या पूछती है? क्यों पूछती है?' कुमारी ने कहा—'कब से बताऊँ? कुल एक ही बार तो वह आये हैं! देखो, जब तुम...... तुम्हारे सबके साथ.......!'

'हूँ! तो उसके बाद नहीं आए न?'

'न।'

करुणा यह कैसे प्रश्न कर रही है!

'पता नहीं, किस चक्कर में रहते हैं। हमारे यहाँ भी मुद्दत से नहीं आए।'

कुमारी एक बार जैसे आकाश से गिर पड़ी। 'क्या कहा ?' उसने आँखें फाड़कर कहा—'तुम्हारे यहाँ भी नहीं आए हैं ?,

'हाँ, ऐसे ही अजीब-से आदमी हैं !' करुणा के ओठों पर रूखी, सूखी, निष्प्रभ मुसकान थी।

कुमारी हँसी, और बोली—'अब नहीं आते, तो क्या ! बीस दिन बाद तो श्रीमतीजी की गंद सूंघकर दौड़े-दौड़े आएँगे।'

करुणा के हृदय-कारागार से एक लंबी साँस मुक्त हो गई। फिर झट हँसकर वह बोली—'अरे ! यह क्या तू कहने लगी ?'

'क्या ?'

'छिः ! अरे, वह तो मेरे भ्राता हैं !' यह वाक्य कहने के लिये करुणा को कितने साहस से काम लेना पड़ा, वही जानती है। ओफ़ ! यह करुणा ने क्या सुनाया ? यह कैसी अद्भुत, अनहोनी, अनपेक्षित बात है ! क्या कुमारी यह कल्पना कर ले ? क्या उसकी सत्यता पर विश्वास कर ले ?

एक मिनट के लिये कुमारी को सर्वत्र अंधकार-ही-अंधकार देख पड़ा, और कुछ बोलने के लिये वाक्य भी न मिले।

तब रुँधे गले से उसने पूछा—'यह तुमने क्या कह डाला ?,

करुणा हँसी, और बोली—'अरे ! क्या तुम्हें मालूम नहीं ?'

'क्या ? अरे ! तुम्हारा व्याह तो प्रोफ़ेसर........।'

अब करुणा खिलखिला पड़ी !

अरे ! अरे ! जा माफ़ करती हूँ। और कोई कहे तो फ़ौजदारी हो जाय, कम-से-कम बोल-चाल तो छूट ही जाय, चल,

चल, बड़ी अक़्लमंद की दुम बनी है। छिः! किसकी स्त्री मुझे बनाने लगी!'

करुणा कहती क्या है ? कुमारी कैसे इसे सच समझे ? हे भगवान् ! यह सूरज पश्चिम में उदय हो गया है, या उसके कान उलटा सुनने लगे हैं, या करुणा का दिमाग़ हो गया है ?

पर कुछ भी न हुआ था। करुणा ने बार-बार कहकर यह समझा दिया कि प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र से नहीं, रामशरण बी० ए० से उसका ब्याह होगा।

अब कुमारी अजीब साँप-छछूँदर में पड़ी। कई बातें पूछना चहती है पर कैसे पूछे ? न करुणा बताने को इच्छुक नज़र आती है। न पूछना उसे संगत लगत है ? भला कैसे पूछे ? उसे लगा, मुझे चिढ़ा रही है, मेरा उपहास कर रही है, मेरे दुर्भाग्य पर प्रसन्न हो रही है। और न भी भला कैसे पूछे ? वह समझे, मुझसे जरा-सी सहानभूति भी नहीं है। मेरे दुर्भाग्य पर प्रसन्न हो रही है।

और इस बात का भी निश्चय नहीं होता कि वह इसे दुर्भाग्य समझती।

पर इसी पूछन-पूछ की स्थिति में दयावती की आवाज सुनाई दी। 'बेटी करुणा है क्या ?'

'हाँ, मा, मैं ही हूँ।' कहकर करुणा बाहर निकल गई।

बाहर निकल जाने में करुणा ने इतनी शीघ्रता क्यों की ? शायद चेहरे की उदासी और आँखों के आँसू छिपाना चाहती थी।

'कह तो बेटी, माँ का क्या हाल है ?

ना का ? अब आशा नहीं है, मा।'

'कैसे ?—क्या हुआ ?'

'रोग भयंकर हो गया है। दो-दो घंटे पर मूर्च्छा हो जाती है घंटे-घंटे पर मुंह से खून गिरता है। डॉक्टर कहते हैं—कुछ ही दिनों की मेहमान हैं !'

'हाय !' कहकर दयावती चुप हो गई।

फिर आप-हीं-आप कहने लगी—'हे परमात्मा ! संतान किसी की मा-बाप के सामने न मरे ! हाय ! दोनों बेटों का ग़म उसे तो खा गया ! राम ! राम !'

करुणा ने उदास होकर सिर झुका लिया, और कहा—'बहुत कष्ट पा रही हैं। अब तो पिताजी भी बारंबार यही कह रहे हैं—ईश्वर ! इन कष्टों से इसे छुटकारा दे !'

'ओह ! राम ! राम !' कहकर दयावती ने कष्ट और सहानुभूति से सिर फेर लिया, और बोली—'आऊँगी' बेटी, आज देखने आऊँगी। ब्याह कब का रहा ?'

'सत्ताईस........' कहते-कहते करुणा ने दाँत-तले जीभ दबाई और शर्माकर कहा—'जाती हूँ, फिर आऊँगी।'

'ओरी, मा !' करुणा चली गई, तो कुमारी ने मा के पास आकर धीरे से कहा—'प्रोफ़ेसर नकुलचंद्र से इसका ब्याह न होगा ?'

मा से कोई जवाब न पाकर कुमारी ने फ़ौरन कहा—रामशरण से होगा।'

मा ने स्थिर नेत्रों से बेटी का मुंह ताका, और खूब गंभीर स्वर में कहा—'मुझे मालूम है !'

कुमारी ने झटपट आँख झुका ली, और टल गई।

मा के नेत्र क्या कह रहे थे मा के नेत्र क्या कह रहे थे ? मा के नेत्र क्या कह रहे थे ?

(२०)

इन बातों को भी कई महीने बीत चुके हैं। करुणा की मा भी मर चुकी है, और रामशरण के साथ उसका ब्याह भी हो चुका है।

निमंत्रण आया था, कुमारी और दयावती दोनों ही गई थीं।

जी हाँ, नकुल अपने प्रतिज्ञानुसार कुमारी के घर नहीं आए हैं। पर इस प्रतिज्ञा की बात कौन-कौन जानता था ? करुणा और नकुल। और हाँ, कुमारी की कल्पना ने भी उसे बहुत कुछ बता दिया था। तो ब्याह में दोनों शामिल हुई थीं। अब वहाँ के मनो भावों और संघर्षों का उल्लेख करके विस्तार बढ़ाना मुझे अभीष्ट नहीं। बस, इतना मैं कह दूं कि नकुल भी निमंत्रण में आए थे, और कुमारी ने उनसे भेंट न की या कुमारी से उन्होंने भेंट न की।

हाँ, दयावती मिली थी। मिली क्या थी नकुल के प्रणाम का उत्तर दिया था, और आँखों में आशा और स्नेह-पूर्ण आकांक्षा भरकर कहा था—'क्यों बेटा, भूल ही गए ? क्या आओगे नहीं !'

नकुल ने क्षण-भर इधर-उधर किया था, और फिर— 'न मा, न आ सकूंगा।' कहकर क्षण मात्र में हट गए।

बस, यह घटना और करुणा का हर बार आते ही नकुल के आगमन के विषय में पूछना, दयावती को बहुत कुछ बताने के

लिये यथेष्ट थे ।

और फिर वह बार-बार बेटी का मुँह देखकर किसी गहन-गंभीर चिन्ता में निमग्न रहने लगी ।

'जीजी ! जीजी !' सहसा एक दिन दोपहर को किसी ने दर्वाजे में धक्का देकर पुकारा—'किवाड़ खोलो ।'

किवाड़ खोला गया, तो जिसकी आशा न थी' वह नकुल नहीं, करुणा नहीं। कौन था ?

दयावती का दूर के रिश्ते का भाई सिरीराम, जो आज चार-पाँच वर्ष बाद जीजी के दर्वाजे आया है !

'ओ हो भैया !' दयावती ने उछलकर कहा—'आओ, आओ हे राम ! आज सूरत........।'

कहकर दयावती भाई से लिपटकर रोने लगी ।

'अरे ! यह कौन ?' जब कुमारी ने आकर मामा को प्रणाम कि ा, तो सिरीराम ने चौंककर कहा ।

'भांजी है भैया तेरी, कुमारी; क्या पहचानता नहीं ?' दयावती ने हँसकर कहा—

'ओ हो ! ठीक !' सिरीराम ने भांजी के सिर पर हाथ फेर कर और उसके चले जाने पर बहन से कहा—'कह तो जीजी कहाँ व्याह किया। हमें तो खबर तक न दी। बल्कि हम लोगों ने तो इस बात का गिला भी बहुत किया।'

दयावती ने कहा—'व्याह अभी हुआ ही कहाँ है भैया ?'

'क्या कहा ?' सिरीराम का पैर जैसे जलते कोयले पर पड़ गय—'क्या कहा ?' व्याह अभी हुआ नहीं है ? अभी तक ? व्याह ? ओफ़ ! क्या उम्र है ?'

'उमर तो बहुत होगई भैया, सत्तरह-अठारह बरस की समझो।'

दयावती ने जान-बूझकर उसकी उमर दो तीन बरस छिपाए।'

'तो तू किस नींद सो रही है, जीजी, इतनी उमर की लड़की क्या घर में रखने लायक है? क्यों सात पीढ़ी को नरक में घसीटने के लच्छन करती है।!'

दयावती ग्रामीण अशिष्टता की अभ्यस्त रह चुकी है। इसलिये भाई की बात का उसने बुरा न माना, और कहा 'क्या बताऊँ....'

'तो सगाई-वगाई........कहीं ठहरी है?'

दयावती लाज से गड़ी जा रही है। कैसे कह दे कि बीस वर्ष की लड़की अभी तक निराधार है। जरा इधर-उधर करके बोली—'हाँ, एक जगह बात चीत चल तो रही है।'

यह बात कहते हुए दयावती का लक्ष कहाँ था? यह क्या मुझे आपको बताना पड़ेगा?

'लड़का तो अच्छा है? पढ़ा-लिखा बुद्धिमान्?' इत्यादि प्रश्न बहुत ही संक्षेप में पूछकर भाई साहब झट अपने मतलब पर आ गए 'जीजी, एक काम से आया हूँ' सिर झुकाकर और चेष्टा में एड़ी से चोटी तक नम्रता भरकर श्रीराम ने कहा—'तेरी सत्तो भी स्यानी हुई है। चौदहवें में लगेगी। तू जाने है, गाँव में अच्छे लड़के नहीं। सब अपढ़। तेरी सत्तो ईश्वर की कृपा से अच्छी पढ़ी-लिखी होशियार है। और यह एक ही लड़की। बस, तो इसके लिये वर की तलाश शहरों में ही करनी पड़ी। भाई साहब ने भूमिका समाप्त की।

सत्तो इनकी कन्या का नाम है। चौथी-पाँचवी तक पढ़ी है। दयावती के पिता की संपत्ति का कुछ अंश पाकर यह भाई साहब आज बड़े आदमी बन बैठे हैं। यही कारण है कि देहात में योग्य जामाता ढूँढ़ना उनके लिये असंभव हो गया।

'हाँ तो, शहर में एक लड़के का पता मिला। बड़ी तारीफ़ सुनी। सुना है, अभी ब्याह नहीं हुआ है। किसी स्कूल में मास्टर है। सुन्दर भी है, और जीजी, मर्द की क्या सुंदरता ? बस, मैं तो परमात्मा का नाम लेकर यहाँ आ पहुंचा। लड़का तो स्कूल गया था, उसका बाप घर में था। उससे बातचीत हुई। आख़िर, तुम्हारी दया से, मैं ग़रीब चाहे जितना हूं, इज्जत-हुर्मत और नाम-प्रतिष्टा तो है ही। लड़के के बाप ने मेरी आव-भगत की, दहेज भी तय हो गया। वर माँगे, वही मैंने स्वीकार किए। आदमी कुछ लालची जरूर मालूम होता है, मगर है सज्जन और पुराने ख़याल का। कहने लगा—'साहब' एक-से-एक सुंदर, पढ़ी-लिखी धनवान् घरों की बेटियाँ मेरे बेटे को मिल सकती हैं, और अच्छे-अच्छे लखपती मेरे पैरों में पगड़ियाँ रख गए, और मैंने नहीं मानी।' बोला—'भाई साहब, मैं शहर की लड़कियों से नफ़रत करता हूं। पहिले तो होती ही खजूर-सी ....' न, बोला 'शहर की लड़कियाँ न तो मेरी ही कुछ सेवा कर सकती है, न अपने पति की। बस, इसलिये मैं तो किसी देहात की लड़की को ही पुत्र-वधू बनाऊँगा।' बस, जब ऐसे विचार, तो रिश्ता होते-ही क्या देर ! सब बातें झटपट तय हो गईं।'

इसके बाद भाई साहब उपसंहार पर आए—'लड़का तो पढ़ाने गया था। आते ही रुपए देकर मैं उसे रोक देना चाहता हूं। बात यह है कि मुझे इतनी जल्दी काम बन जाने की आशा तो थी नहीं, इसलिये गाँव से किसी स्त्री को नहीं लाया था।

अब तुम अपनी ही हो। हमारे यहाँ स्त्रियाँ ही लड़के को रोकती हैं, यह तो तुम भी जानती ही हो। सो मैं इसलिये तुम्हारे पास आया हूं कि तुम दोनों मां-बेटी मेरे साथ चलो, और लड़के के हाथ में रुपए देकर उसे रोक दें।'

भाई का स्वार्थ समझकर भी निर्मल-हृद। दयावती के मन में कोई रोष उत्पन्न न हुआ। बल्कि मन-ही-मन वह कुछ हंसी। ओह! संसार कैसा स्वार्थी है!!

तब उसने बिना अधिक पूछ-ताछ किए कहा—'अच्छा भैया चलूंगी। तू रोटी खा। मेरी तो 'आँखों सुख, कलेजे ठंडक'। अभी चलूँगी। दोनों चली चलेंगी।'

बहन का मन रखने के लिये भाई ने जल्दी-जल्दी भोजन किया कुमारी को दो रुपए दिए, और कहा बर्तन आकर माँज लेना, चलो, जल्दी चलो।'

दयावती ने हँसकर चिढे हुए ढंग से कहा—'क्यों घबराते हो भैया, लड़का दूसरी जगह नहीं जा सकता। चार हजार थोड़े नहीं होते।'

मन में तो भाई साहब कटे भी खूब और झुंझलाए भी खूब, और बहन की ईर्ष्यालु प्रकृति पर क्रुद्ध भी खूब हुए, पर ऊपर से एकदम दाँत निकालकर बोले—'सत्तो तुम्हारी ही लड़की तो है जीजी, कोई और तो है नहीं, जैसा उचित समझो, करो। ब्याह-[illegible] की मालिक, इस समय तुम्हीं हो।'

दयावती ने कुछ पछता कर कहा—'यह तो हुई भैया, मैं तो हंसती थी। ले कुमारी, चल जल्दी।'

'तो मुझे जाना ही होगा?'

'चल-चल! क्या कहती है। चल जल्दी! नहीं [illegible] सम-

झेगा, जलकर नहीं चलती हूं। पहन कपड़े।'

मा-बेटी झटपट तैयार हो गई, और भाई के साथ ताँगे में बैठकर चलीं।

अरे! यह कौन? शंकरलाल! चुप, चुप कुमारी को न बताईये, सारा गुड़-गोबर हो जायगा! ओफ़! यहाँ कहाँ आ गए? अरे, क्या नकुल ही सिरीराम के जामता बनेंगे? वाह! वाह! अब....? कब देखें, क्या होता है?

उस अंधेरे, गड्ढेदार घर के एक कोने में मा-बेटी छुप-छुपाकर बैठे गई। वर से बेपर्दगी की जा सकती है, पर समधी से कैसे करें? उधर सिरीराम जाकर समधी महोदय के पास बैठ गया। बोला—'कहिए अभी आए तो नहीं?'

'अभी तो नहीं आए' शंकरलाल ने किसी विचार से चौंककर सहसा पूछा—'क्यों जी, बिदा के बर्तन तो चाँदी के होंगे न?'

सिरीराम ने उनकी बात समझकर धीरे स्वर में कहा—'अजी, जो आप कहेंगे, हो जायगा, रिश्ता तो होने दीजिए।'

गुर्राकर शंकरलाल ने कहा—'तो आप क्या मुझे ऐसा ओछा समझते हैं कि रिश्ते के बाद आपके सामने एक-एक चीज़ के लिये हाथ फैलाऊँगा, या एक-एक चीज़ के लिये झगड़ा करूँगा? महाशय, जब तक रिश्ता नहीं होता, हम परस्पर अपरिचित हैं मगर उसके बाद....।'

कहते-कहते जोर की खाँसी उठी, और वृद्ध शंकरलाल खों-खों करके जोर से खाँसने लगे। खाँसी के साथ बहुत-सा खून निकलकर कपड़ों में गिर गया।

सिरीराम झिझककर पीछे हट गया, दयावती ने सहानुभूति-सूचक ध्वनि की, कुमारी की आँखों में आँसू भर आए।

बिछौना बेतरह गंदा था। बदबू फैल रही थी। एक तरफ़ चौकी पर कुछ उजले कपड़े रक्खे थे। कुमारी ने एक बार उनकी तरफ़ देखा, फिर वृद्ध की, और चुप रह गई।

रह-रहकर इस वृद्ध की परिचर्या करने की प्रेरणा उसके मन में होने लगी। ओह! बिना उपचार वह किस प्रकार दुर्दशा ग्रस्त हो रहा है।

खाँसते-खाँसते वृद्ध व्याकुल हो उठा। आँखों से झर-झर पानी बहने लगा, कपड़े सारे खून से तर हो गए, और बिस्तर—वह गंदा-मैला, जैसा कुछ था—अस्त व्यस्त।

वृद्ध उठने की कोशिश करने लगा, पर न उठ सका। श्री-राम घृणा से नाक सिकोड़े परे खड़ा था।........

सहसा कुमारी उठकर, तेजी के साथ, वहाँ पहुँच गई, और वृद्ध का हाथ पकड़कर धीरे से बोली—'उठिए।'

वृद्ध उठा, उठकर एक बार भर-नजर कुमारी को देखा। कुमारी ने लजाकर सिर झुका लिया। पर लजाने की जरूरत नहीं थी। अपने भाव-हीन नेत्रों में वृद्ध कृतज्ञता लाने की चेष्टा कर रहा था। क्षण-भर दम लेकर उसने धीरे से कहा—'बेटी, मेरी लकड़ी तो पकड़ा दो, जरा।'

ओह! इस लेखक ने आज पहले-पहल यह स्नेह-संबोधन शंकरलाल के मुँह से सुना है।

कुमारी ने लकड़ी पकड़ा दी। वृद्ध आकर दहलीज की तरफ़ चला। श्रीराम ने पूछा—'कहाँ?'

'पाखाना।'

इतने में शंकर लाल वापिस आए। क्षण-भर ठिठककर उन्होंने कुमारी का कार्य-कलाप देखा, और तब सहसा वृद्ध के झुरीदार मुख पर मुस्किराहट दिखाई दी।

'आइए, लेट जाइए।' कुमारी ने लजाकर कहा—'मैंने आपका बिस्तर बदल दिया है।'

शंकरलाल आगे बढे, और उस गुदगुदे बिस्तर पर बैठ गए। कुमारी ने साफ़ कपड़े का चिथड़ा लेकर उन के कपड़ों पर गिरा हुआ खून साफ़ कर दिया और कहा— 'यह इतने कपड़े आपने क्यों पहन रक्खे हैं। सिर्फ़ एक पहने रहिए।'

इस ज़रा-सी लड़की के स्वर में न-जाने कैसी विलक्षणता है कि वृद्ध ने सहसा उसका आधिपत्य मान लिया, और शासित बनकर, मुस्किरा कर एक बंडी के अतिरिक्त सब कपड़े उतार डाले।

कपड़े उतारकर वृद्ध लेट गया, और श्रीराम की तरफ़ देखकर बोला—'यह लड़की कौन है ?'

'मेरी भांजी है।' श्रीराम ने दाँत निकालकर और आगे बढ़कर कहा।

'तुम्हारी भांजी ?' वृद्ध ने लगभग साथ-ही-साथ कहा, और तब आँखें बंद कर के लेट गया।

कुमारी ने वे मैले कपड़े तह करके चौकी पर रख दिए, और झाड़ू उठाकर झटपट कमरा साफ़ कर डाला।

सहसा वृद्ध ने कहा—'धन्य है बेटी! तू बड़ी अच्छी लड़की है। ईश्वर तेरा सौभाग्य अचल रक्खे !'

वृद्ध का यह वाक्य पूरा दर्वाजे पर खड़े हुए एक व्यक्ति ने सुना, और तब वह भीतर घुस आया।

यह कौन ।

जिसकी प्रशंसा हुई थी, उस लड़की को नकुल ने सबसे पहले देखा, दोनों एक बार अपनी-अपनी जगह पर उछल पड़े ।

'परंतु सिरीराम का प्रस्ताव धीरता-पूर्वक सुनकर नकुल ने कहा—'मेरा ब्याह तो किसी और से होना निश्चित हो चुका है !'

'किससे ?' सिरीराम ने चौंककर पूछा ।

नकुल ने एकबार अर्थ-पूर्ण दृष्टि से पिता की ओर ताका, और तब कुमारी को देखकर धीरे से मुस्किरा दिया

दयावती दौड़ पड़ी........

परिशिष्ट

एक दिन करुणा मिसेज़ नकुल के घर आई, और हँसकर बोली—'ओरी कुम्मो, बधाई देने आई हूँ,'

कुमारी ने हँसकर सिर झुका लिया।

'और एक कैफ़ियत भी देने।' करुणा ने कहा—'देखा, रामशरण स ब्याह मैंने अपनी इच्छा से किया था।'

कुमारी ने मुस्किराकर आकाश की ओर ताका और कहा—'भाग्य.......'